साँस्कृतिक

विचार

लेखक :—

स्वामी नारायणमुनिश्चतुर्वेदः

आदरणीय आचार्य प्रियव्रत वेदवाचस्पति
जी को सादर भेंट

स्वामी नारायणमुनिः
चतुर्वेद
गुरुकुल महाविद्यालय
ज्वालापुर
दिनांक: १६।१२।८०

॥ ओ३म् ॥

स्वामी नारायणमुनि प्रकाशन -माला का—

प्रथम-विचार-बिन्दु

★ साँस्कृतिक-विचार ★

श्री स्वा० नारायणमुनिश्चतुर्वेदः

कृतिपरिचय —

लक्ष्मीनारायण चतुर्वेदी .M A.
साहित्याचार्य विद्याभास्कर आयुर्वेद भास्कर,
भू० पू० प्राचार्य
गुरुकुल महाविद्यालय, ज्वालापुर
जि० सहारनपुर उ० प्र०

सम्पादक एवं प्रकाशक
माधव प्रसाद उपाध्याय शास्त्री, विद्याभास्कर
गुरुकुल महाविद्यालय, ज्वालापुर
जि० सहारनपुर (उ० प्र०)

प्रकाशक :—

माधव प्रसाद उपाध्याय,
C/O श्री केशव प्रसाद शास्त्री विद्याभास्कर
एम्. ए.
गुरुकुल महाविद्यालय, ज्वालापुर
जि० सहारनपुर (उ० प्र०)

प्रथम संस्करण-अप्रैल १६८०

मूल्य ५-०० रु०

मुद्रक :—
श्री दुर्गा प्रिंटिंग प्रेस, कस्सेहरा बाजार, ज्वालापुर

प्राक्कथन

"ओ३म् पाहि मां यज्ञन्यम्" ॥

स्वप्न में भी पता नहीं था कि जिसे न तो लिख पाने की पगडण्डी का पता है, न बोल पाने की प्रवृत्ति पर स्वल्प भी प्रसाद मिल पाया है,न कल्पना प्रसूत अकल्पित ललित कलाओं का कौशल प्राप्त है और नाही परमोन्नत आप्त महापुरुषों को अपनी योग्यता से प्रसन्न करने की शक्ति उपलब्ध है, उस पर ऐसा भार आ पड़ेगा कि वह ज्ञान पिपासुओं को कुछ चिन्तन के पयोबिन्दु समर्पित करने के लिये अपनी सेवा प्रस्तुत करे ।

परम पावन उपलब्धियों के अपार अकूपार महापुरुष मुझे निस्सन्देह हृदय से क्षमा करेंगे कि मैं अपने को विपश्चिज्जनों की दिव्य दृष्टि में परिहास का अपावन पात्र बनाने चला हूँ ।

क्या करूं कुछ श्रद्धालु हृदयों के द्वारा दिये गये पुनः पुनः प्रोत्साहन के प्रसाद को चखकर न जाने क्या-क्या चख-जख करने की सूझ गयी है ।

यदि इस चख-चख में कुछ भी चखकर चाखने वालों को अच्छा लगा तो अरुचिकर लिखे जाने की शतशः चिन्ता रेखाओं में कोई भी चिन्ता रेखा मिटने से ही त्राण मिल जायेगा

सांस्कृतिक विचारों के यदि कुछ बिन्दु पाठक जन अपने चाक्षुष प्रत्यक्ष के कल्पित पात्र से चखकर इस क्षुद्र लेखक को उत्साहित करेंगे तो यह अतर्कितोपनत सौभाग्य होगा !

इस साधारण लघु पुस्तिका के लेख समय-समय पर परिवर्तित परिस्थितियों के चित्रण के कारण असामयिक भी लग सकते हैं और सामयिक होने के कारण असन्तोषजनक भी न लगेंगे। शीघ्रता में छपाने के कारण तथा प्रेस के द्वारा प्रूफ संशोधक का प्रबन्ध ठीक न होने से जो न्यूनतायें रह गई हैं उनका दूरीकरण यथासमय अवश्य किया जायेगा।

कृपालु पाठक लेखों के चयन में भानमती का कुनबा देखकर उद्विग्न न हों क्योंकि यह सब अनिच्छन्नपि करना पड़ा है पुनरपि जैसा भी अस्वादु या स्वादु यह चिन्तन बिन्दु इस लघु पुस्तिका की शीशी में डालने वाले गुरुकुल महाविद्यालय, ज्वालापुर के श्रद्धालु हृदयों की सत्प्रेरणा से इस कार्य की पूर्त्यर्थ क्रियाकेवलमुत्तरम् हो अशीर्वाद रहेगा, क्योंकि इन्होंने "ब्रुवते हि फलेन साधवो न तु कण्ठेन निजोपयोगिताम्" की सूक्ति पर आचरण किया है।

यदि प्रभुकृपा और स्वास्थ्य ने साथ दिया तो कुछ और चिन्तन बिन्दु प्रस्तुत करने के लिये साहस किया जायेगा।

विदुषामन्तेवासी

नारायणमुनिश्चतुर्वेदः

अक्षय तृतीया

दिनाङ्क- १८-४-८०

अपनी बात

आदरणीय पूज्य गुरुवर्य श्री स्वामी नारायणमुनिश्चतुर्वेद: के द्वारा विभिन्न कालों एवं विभिन्न परिस्थितियों में लिखित कुल २४ लेखों अथवा भाषणों का संग्रह "सांस्कृतिक विचार" आर्य जनता के विशेषत:आर्य युवकों केसम्मुख प्रस्तुत करते हुए अपार हर्ष की अनुभूति हो रही है। पूज्य गुरुवर को छत्रछाया में बीते लगभग १० वर्षों के उत्तरार्द्ध के प्रारम्भ से जो बेचैनी आपके किसी लिखित स्थायी सामग्री के न होने की रहती थी उसी का चरम परिणति स्वरुप स्वा०नारायणमुनि प्रकाशन माला का यह प्रथम विचार बिन्दु प्रथम प्रकाशन प्रथम प्रयास है।

"सांस्कृतिक-विचार" के नाम से यह संग्रह एक पुस्तक की दृष्टि से न लिखा जाकर समय-समय पर लिखे गये प्राय: उन भाषणों या निबन्धो का संग्रह मात्र है जो विभिन्न कालों में ब्रह्मचारियों, छात्रों अथवा विद्यार्थियों को भाषण प्रतियोगिता, वाद विवाद प्रति-योगिता अथवा अन्य सभा इत्यादियों में याद कराकर वक्तृत्व कला की ओर अग्रसर करने के उद्देश्य से तैयार किये गये हैं। इस युग के सफल वक्ता स्व० श्री प्रकाशवीर शास्त्री की सफलता में आपके इस प्रकार के लेखों का अन्यतम योगदान रहा है। इस प्रकार के इन लेखों में आपको जहां एक ओर भाषा का प्रवाह, स्वाभाविकता, शैलीगाम्भीर्य एवं अनुप्रास जैसेअलंकारों की स्वाभाविक छटा चमत्-कृत करेगी वहीं इनको पढते हुए एक वक्ता के द्वारा अपना अभूतपूर्व व्याख्यान देने की ही अनुभूति आपको चमत्कृत किये बिना न रहेगी। इस प्रकार इस पुस्तक का अनुशीलन आज के छात्र वर्ग को वक्तृत्व कला में निष्णात करने के लिए अत्यन्त उपायोगी सिद्ध होगा।

इसके साथ ही यह संग्रह अपने नाम के अनुरूप ही केवल भाषणों का संग्रह न होकर राष्ट्र कवि श्री मैथली शरण गुप्त के शब्दों में जहाँ-

हम क्या थे क्या होगये, और क्या होंगे अभी ।
आओ बिचरें बैठकर ये समस्याएं सभी ॥

का पर्याप्त दिग्दर्शन करायेगा, वहां इस में वैदिक अथवा भारतीय संस्कृति या सभ्यता की मान्यताओं का भी पर्याप्त चिन्तन दृष्टिगोचर होगा । इस संकलन के वैदिक संस्कृति, भारतीय संस्कृति समाजवाद और विश्वशान्ति, प्राचीन भारतीय संस्कृति, वैदिक विचारधारा में जनतन्त्र, विज्ञान और नास्तिकता, धर्मनिरपेक्ष नीति का अनौचित्य, अंग्रेजी की अक्षमता, हिन्दी का वैशिष्ट्य, गुरुकुलीय उपादेयता, अहिंसा से शान्ति, अध्यात्म चिन्तन इत्यादि अधिकांश लेख उक्त कथनों की ही पुष्टि करते हैं । आर्य जाति का सिंहावलोकन, जगद्गुरुभारत, अखण्ड भारत, भारतोन्नति इत्यादि एवं उपर्युक्त भी समस्त लेख राष्ट्रीय भावना से ओतप्रोत होकर हमें अपने अतीत और वर्तमान के चिन्तन की ओर बलात् विवश करेंगे । इसके साथ ही वैदिक संस्कृति, वैदिक विचारधारा में जन-तन्त्र, विज्ञान और नास्तिकता, धर्मनिरपेक्ष नीति का अनौचित्य आदि लेख. राष्ट्र के विचाधारा की तात्कालिक आवश्यकताओं का चिन्तन कराते हैं । इस प्रकार वेद एवं उपनिषत् इत्यादि के आधार पर इस आत्मालोचन के पश्चात् अन्त में चार महापुरुषों का परिच-यात्मक दिग्दर्शन उक्त विचारधारा में ओतप्रोत हुए पाठक एवं चिन्तकवर्ग को मार्ग दर्शन एवं निर्धारण के लिये प्रकाश एवं उत्साह का कार्य करायेंगे । सबके अन्त में यज्ञपद्धति की आवश्यकता सम्बन्धी सद्यः लिखित लघु लेख भौतिक प्रवृत्ति से अन्धा होकर दौड़ने वाले

आज के संसार के लिये लेखक की ओर से एक ऐसी चुनौती है जिस पर सभी मनीषियों का चिन्तन इस ओर आवश्यक है ।

इस प्रकार यह संकलन मूलतः छात्रों की वक्तृत्व-कला, चिन्तनमनन शक्ति एवं उत्सवादिकों में प्रवृत्ति को तो जागृत एवं समुन्नत करेगा ही साथ ही साथ आज के नौजवानों के चरित्र, आचार, विचार की शुद्धि के साथ प्राचीन भारतीयता के प्रति गौरव एवं सम्मान को भी जागृत करेगा और साथ ही साथ समस्त विचारक आर्यजन भी इसके अनुशीलन से प्राचीन भारतीय वैदिक विचारधारा की ओर व्यावहारिक चिन्तन में अग्रसर होंगे, ऐसी पूर्ण आशा है ।

इस संकलन के इस सयम प्रकाशन का अधिकांश श्रेय अपने अभिन्न हृदय सुहृद्वर श्री नन्दकिशोर "विनीत" एवं प्रद्युम्नेश आर्य को है जिन्होंने इस कार्य के प्रति मेरी भावना को जागृत किया एवं सहयोग के वचनों से मुझे समुत्साहित करते रहे। एतदर्थ सधन्यवाद आगे भी इसी प्रकार के सहयोग की आशा है । इस कार्य के प्रारम्भ हो जाने पर मेरे अवलम्ब पूज्यवर भ्रातृचरण श्री केशव प्रसाद जी शास्त्री एम्. ए. ने मेरी भावना एवं शक्ति को उद्गत करके इस गुरुतम कार्य में दिशानिर्देश एवं आवश्यकतानुसार स्वयं कार्य किया है, मुझे पूर्ण विश्वास है कि आपका वरद् हस्त मेरे भावी सम्पूर्ण जीवन में इसी प्रकार स्नेह और सौजन्य के साथ बना रहेगा । मेरे छोटे भाई के सदृश प्रिय देवशर्मा ने इसके मुद्रणादिक के लिये जो अथक परिश्रम निःस्वार्थ भाव से किया है तदर्थ शतशः धन्यवाद एवं सच्चारित्र्य, सद्विचार, के साथ

सन्मार्ग पर चलने के लिये शुभ भावनाएं और अपने जीवन के उच्च एवं पवित्रतम लक्ष्यों को बनाकर तत्प्राप्ति के लिये बहुशः शुभकामनाएं।

भावी समय में आर्यजनों का यदि सहयोग मिला तो पूज्य स्वामी जी की अन्य अप्रकाशित रचनाएं मुक्तक शतक, सार्वभौम धर्म, मन्त्रशतक, गायत्रीदर्शन इत्यादि छोटी छोटी पुस्तकों के रुप में इसी प्रकाशनमाला के क्रम में यथाशीघ्र प्रकाशित की जायेंगी। जो समस्त आर्यविचारकों, चिन्तकों. साधकों, विद्वानों, मनीषियों एवं सभी श्रद्धालु स्वाध्याय शीलजनों तथा छात्रों के लिये भी अत्यन्त उपादेय होंगी।

सहयोगापेक्षी:—

वैदिक साधनाश्रम, तपोवन, देहरादून, २४८००८ — माधव प्रसाद उपाध्याय

दिनाङ्क १०-३-१९८०
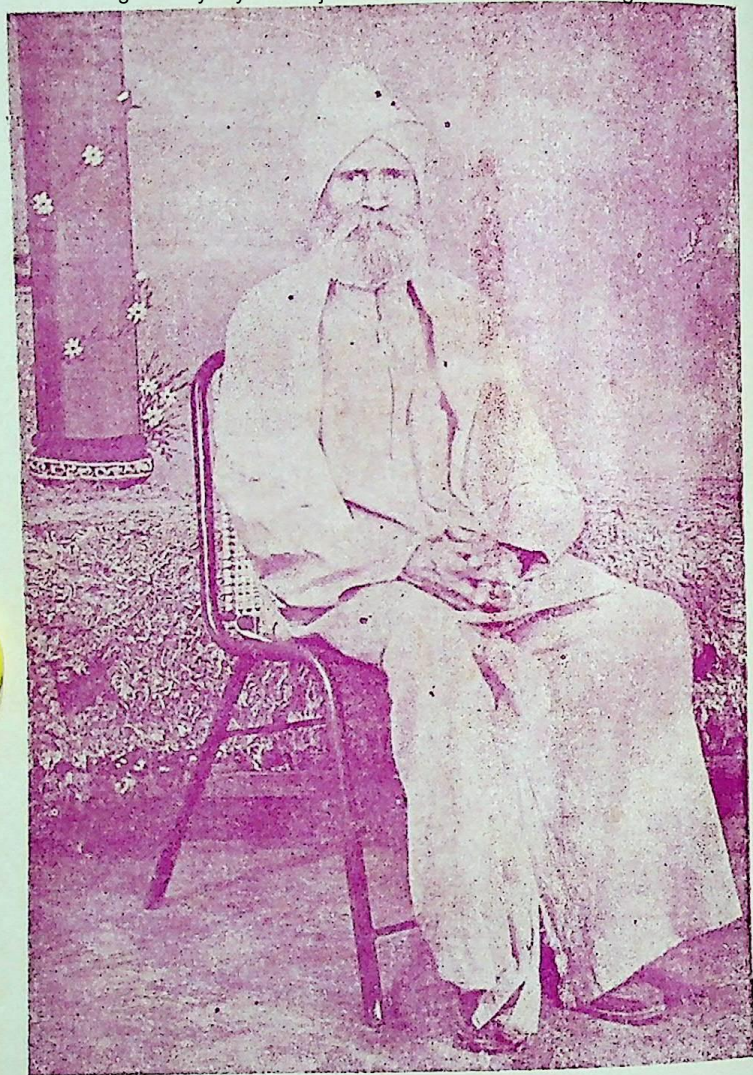
श्री स्वामी नारायणमुनिश्चतुर्वेदः

नारायण मुनेरतत्-संक्षिप्त वृत्तमष्टकम्

आठ छन्दों में श्री नारायणमुनि जी का

संक्षिप्त परिचय

आयुर्वेदेऽथ वेदे च शब्दज्ञानेऽथदर्शने ।
साहित्ये ज्योतिषे शास्त्रे सिद्धोनारायणोमुनिः ॥१॥

अर्थः- वेद, आयुर्वेद, व्याकरण, दर्शन, साहित्य और ज्योतिष-शास्त्र में नारायण मुनि उच्च कोटि के विद्वान् हैं ।

ब्रह्मध्यानसुधापानलब्धसौभाग्यवंशजः ।
वेदोक्त मार्गमुद्दिश्य सदा सेवां समाश्रितः ॥२॥

अर्थः- ब्रह्म ध्यान रुपी अमृतपान करने के सौभाग्यको प्राप्त करने वाले वंश में उत्पन्न होकर वेदोक्त मार्ग को लक्ष्य बनाकर सर्वदा सेवा में लगे रहते हैं ।

जन्मना मृत्यु रोगेण पैतृकेण युतोऽप्ययम्।
गतो भगवतो भक्त्या वर्षाणामेकसप्ततिम् ॥३॥

अर्थः- जन्म से ही मृत्यु दायक पैतृक रोग से आक्रान्त होने पर भी केवल प्रभु भक्ति के बल पर इकहत्तर वर्ष की आयु में आ गये हैं ।

महाविद्यालये ज्वालापुरीये च गुरोः कुले ।
शिक्षितः शिक्षको भूत्वा प्रधानाचार्यतां गतः ॥४॥

अर्थः- गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर में अध्ययन करके पहले प्राध्यापक हुए और तदनन्तर प्रधानाचार्य पद पर प्रतिष्ठित हुए ।

लेखनंभाषणैकाव्यरचनावचनामृतैः ।

सर्वानमरतां नेतु यज्ञविज्ञानमाश्रितः ।।५।।

अर्थः- लेखन भाषण और काव्य रचना रूप वचनामृतों से सबको अमर बनाने के लियें यज्ञ मर्मज्ञ होकर शोभित हो रहे हैं।

सद् गुणै: सद्विचारैश्च सर्वभूत हितैस्तथा ।
पाटवेन च शास्त्राणां विद्वच्चक्रसमादृतः ।।६।।

अर्थः- सद्गुणों से, सद्विचारों से, प्राणीमात्र के कल्याण कारक आचरणों से तथा शास्त्र पटुता के कारण आप विद्वज्जन समवाय से समादृत हैं।

दयानन्दर्षिणा पृष्टः सन्तुष्टेनास्य विश्रुतः ।
पितामहश्चतुर्वेदोपाधिभूषाभुपागतः ।।७।

अर्थः- बहुत समय पूर्व महर्षि दयानन्द को चारों वेदों के मन्त्रों को सुनाकर सन्तुष्ट हुए उनसे चतुर्वेद की उपाधि प्राप्त करने वाले इनके पितामह राम प्रसाद थे।

तद्रक्षणार्थमेवायं स्वात्मना स्वकुलोद्भवाम् ।
उपाधिं श्रद्धयाबद्धः सन्दधाति सुधासमाम् ।।८।।

अर्थः- वेदाध्ययन परिपाटी की रक्षार्थं अपने कुल की अमृत तुल्य इस चतुर्वेदोपाधि को श्रद्धा पूर्वक नाम के साथ लगाते हैं।

श्लोक रचयिताः-

विनयावनतः श्रीमन्नारायणमुनेरन्तेवासी-
केशव प्रसाद शास्त्री उपाध्याय एम. ए.

अनुवादकः-

ब्र० देव शर्मा आर्य विद्या भास्कर प्रथम वर्ष

सन्दर्भ - सूचि

ईश-स्तुति

१- ओ३म् विश्वानि देव ! सवितर्दुरितानि परासुव ।
यद् भद्रं तन्न आ सुव ॥

भावच्छाया :-

पिता माता भ्राता सब कुछ विधाता तुम विभो,
जगत्कर्ता धर्ता सकल मल हर्ता विदित हो,
समाया माया में बहुतर घुमाया गिर गया,
प्रभो आवो धावो निज उर लगावो कर दया ॥१॥

२- ओ३म् हिरण्य गर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्
स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥

भावच्छाया :-

महाज्योतिर्ज्योतिः परमपरिपुज्योति महिमा,
जगद्धारे प्यारे प्रभुवर हमारे रम रहे,
कहाँ मेरा तेरा अविचलित चेरा जब बना,
तिहारा मैं हारा अब गह सहारा शरण हूं ॥२॥

३- ओ३म् य आत्मदा बलदा यस्य विश्व उपासते । प्रशिषं यस्य
देवाः यस्यच्छाया ऽमृतं यस्य मृत्युः कस्मै देवाय
हविषा विधेम ॥

भावच्छाया :-

शरीरी शारीरी उभय भय हारी बन रहा,
जिसे प्यारा प्यारा बिबुधजन सारा कह रहा,
यतश्छाया छाया उस रहित पाया मरण को,
उसे धाया धाया श्रम सहित आया वरण को ॥३॥

४– ओ३म् यः प्राणतो निमिषतो महित्वैक इद्राजा जगतो बभूव।
य ईशे अस्य द्विपदश्चतुष्पदः कस्मै देवाय हविषा विधेम।।

भावच्छाया :-

जगद् हृद्या विद्या विदित अनवद्या श्रुति जिसे,
अकामी सत्कामी चर अचर स्वामी कह रही;
द्विपाये चौपाये मिल मिल समाये सब जहाँ,
वहाँ जाना ठाना अब तज बहाना हृदय ने ।।४।।

५– ओ३म् येन द्यौरुग्रा पृथिवी च दृढा येनस्वः स्तभितं येन नाकः । यो अन्तरिक्षे रजसो विमानः कस्मै देवाय हविषा विधेम ।।

भावच्छाया :-

खड़ा जो ये सारे दिनकर सितारे प्रभृति को,
धरा द्यौ को धारे सुर गृह उभारे उदित हो,
सदा से जो जागा सकलजग रागा रम रहा,
उसे भागा-भागा यह जन अभागा भ्रम रहा ।।

६– ओ३म् प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो विश्वा जातानि परिता बभूव।
यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नो अस्तु वयं स्याम पतयो रयीणाम् ।।

भावच्छाया :-

अये अन्तर्यामिन् ! अखिल जग स्वामिन् ! नहिं कहीं,
मुझे कोई पाया तुम सम समाया भुवन में
करूँ तेरी पूजा रुचिकर न दूजा विभव में
दुरावो दुःखों को धनपति बनाओ अब हमें ।।६।।

७- ओ३म् स नो बन्धुर्जनिता स विधाता धामानि वेद भुवनानि विश्वा। यत्र देवा अमृतमानशानास्तृतीये धामान्यध्यैरयन्त ॥

भावच्छाया :-

वही भ्राता त्राता गुरुवर विधाता प्रथित है,
वहीं ज्ञाता जाता त्रिभुवन समाता ग्रथित है,
वहीं गाता गाता बुधजन अघाता मुदित हो,
वही आता आता अहह ! नहिं पाता द्रवित हो ॥७॥

८- ओ३म् अग्ने नय सुपथाराये अस्मान् विश्वानिदेव वयुनानि विद्वान् । युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठां ते नम उक्तिं विधेम ॥

भावच्छाया :-

प्रभो मेरे स्वामी शुभ सुपथगामी अब करो,
बड़े हो विज्ञानी दुरित दुःख खानी मम हरो,
सुधाधाराधार ! स्वजन उपकार प्रवण हो,
कृपापारावार ! प्रणति इस बार ग्रहण हो ॥

—❀—

१-

आर्य जाति का सिंहावलोकन

एक दिन था जब अतीत की गोदी में बैठकर आर्य जाति ने तपोमूर्ति बनकर ब्रह्म का साक्षात्कार किया था। वेदों का आदि ज्ञान मानों इसी जाति का सौभाग्य बनकर प्रादुर्भूत हुआ था। अध्यात्म ज्ञान का प्रबोध इन्हीं की घोर धिषणा का धुरीण था। प्रकृति के अज्ञात तत्व इन्हीं की तात्विक प्रतिभा के प्रतिभू थे। मानव जीवन की अनिर्णीत प्रवृत्तियां निवृत्ति पथ के साथ-साथ भी इन्हीं को पथप्रदर्शनार्थ बाध्य होती थी। लौकिक ज्ञान और पार लौकिक ज्ञान निर्मल आलोक बन कर इन्हीं के अन्तर्लोचनों में विचरता था। परस्पर विरुद्ध भी राजनीति और धर्मनीति अनीति का मार्ग छोड़कर इन्हीं को कर्तव्य पथ का पथिक बनाती थी। मन्त्र दर्शन की स्तुत्य शक्ति इन्हीं की अनुरक्ति में अपनी विपुल भक्ति का प्रदर्शन करती थी। एक ओर यदि खगोल विद्या ने प्रकृति का अनवद्य सौन्दर्य इन्हें दिखाया तो दूसरी ओर भूगोल विद्या भी अपनी अनिन्दनीय ज्ञान-मन्दाकिनी का अदभ्रदर्शन कराती थी। सङ्गीत की आकर्षक लहरियों ने यहीं से झङ्कृत होना सीखा था। साहित्य के सुधारस ने यहीं से बहने का अभ्यास किया था। ज्योतिष शास्त्र के अनिर्वचनीय लोचन इन्हीं की चरण सेवा से खुले थे शब्द विद्या व्याकरण शास्त्र ने न जाने कौन सा तप किया था, जिस से उसे आर्य मुनियों के ही हृदय मन्दिर में सर्व-प्रथम प्रादुर्भूत होने का सौभाग्य उपलब्ध हुआ था। एक ओर धनुर्वेद इनका प्रहरी था तो दूसरी ओर आयुर्वेद अङ्गरक्षक बनकर

जागरुक रहता था। विज्ञान के चमत्कारिक आविष्कार सर्व प्रथम इन्हीं की धवल बुद्धि पर लट्टू हुए थे। ऐसा प्रतीत होता है जैसे विश्व का समस्त ज्ञान अज्ञान से त्रस्त होकर सर्वप्रथम इन्हीं की शरण आया था। इसीलिये मानव जाति का सौजन्य उस समय अपने ऊर्जस्वी यौवन पर था। भ्रातृ भाव द्वेषदम्भ के अभाव से आत्मविभोर होकर परमानन्द की अनुभूति में निमग्न था। पारस्परिक विश्वास निश्चिन्तता के निश्वास लेता था। अन्योन्य सहयोग एक दूसरे की समुन्नति के नित नूतन प्रयोगों में उत्सुक रहता था इसी लिये सत्य व्यवहार ही प्रत्येक की व्यवहार भूमि का तीर्थ था, सहानुभूति परस्परानुभूति के बिना रहना अपना अपमान समझती थी और समदृष्टि के बिना आनन्द वृष्टि का मूल्य ही क्या था।

आर्यों का प्रत्येक निवासगृह मानों उपासना मन्दिर था। इसीलिये दस्युओं और तस्करों के भय से निश्चिन्त होकर उनके कपाट द्वार इस प्रकार खुले रहते थे जैसे वे आर्यों के हृदयों के समान ही निष्कपट हों। छल, प्रपञ्च, असत्य, अनाचार, दुर्विचार और भ्रष्टाचार का तो उस समय जन्म भी न हुआ था। षड़यन्त्र बिचारे मुंह लटकाये न जाने कहाँ छिपे रहते थे। कलह कालुष्य के तो पैर ही ऐसे लड़खड़ाये हुए थे कि उन्हें सम्मुख आने का साहस ही न होता था।

परन्तु खेद "हत विधि निहतानां हा! विचित्रो विपाकः" के अनुसार आर्यों के प्रमाद पर असुर प्रवृत्तियों ने आशा के बांध बांधकर निर्बाध बढ़ना प्रारम्भ कर दिया और देखते- देखते ही

विदेशियों विधर्मियों के दुस्साहस ने आर्य संस्कृति के साथ उपहास करने की ठान ही तो ली। सर्व प्रथम वाम मार्ग ने सन्मार्ग को दे पटका। कर्तव्य पथ में दुष्ट पथ ने ऐसे काँटे बिछाये कि सृष्टि के आरम्भ से चली आती हुयी ऋषि मुनियों की सदाचार परम्परा को पथभ्रष्ट होकर ठोकरें खाने के लिये भटक जाना पड़ा। ब्रह्मबल और क्षत्रबल अनाथ हो गये। तपोबल और विज्ञानबल को राज-यक्ष्मा क्षयरोग हो गया। भ्रातृभाव द्वेषभाव से पराभूत हो गया। सौजन्य मुरझा गया। दौर्जन्य पर्जन्य धारा के समान निराधार ही जन-जन मानस के व्योमप्रदेश से ऐसा बरसना प्रारम्भ हुआ कि उसकी बाढ में बडे-बडे दृढता के बाँध भी प्रस्फुटित हो गये। ऋषि मुनियों का देश म्लेच्छों का प्रदेश बन गया और दो सहस्र वर्षों तक हमारी स्वाधीनता पराधीनता की बेडियों में जकड़ी हुयी कराहती रही।

परन्तु जब-जब धर्म की हानि होती है तब-तब कोई महापुरुष जिनकी कि इच्छा :-

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत !
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ।।
परित्राणाय साधूनाँ विनाशाय च दुष्कृताम् ।
धर्म संस्थापनार्थाय संभवामि युगे-युगे ।।

के अनुसार होती है वे अवतीर्ण हो ही जाते हैं। बस आर्य जाति के भाग्य ने पलटा खाया और प्राची में एक चमक कौंध गई। गगनमण्डल आलोकित हो उठा। आनन्द मङ्गल का तूर्यनाद होने लगा और हमने देखा कि स्वाधीनता के धनी, प्राचीन संस्कृति के

शुद्ध उपासक, भारतीय सभ्यता के साक्षात् वैभव, वर्णाश्रम मर्यादा के पक्षपाती और वेदालोक के अभूतपूर्व भानु महर्षि दयानन्द सरस्वती का अभ्युदय हो गया। वेद प्रदीप जो विदेशियों और विधर्मियों के झञ्झावात से बुझ गया था पुनः प्रदीप्त हो गया अज्ञानान्धकार विच्छिन्न हो गया। कुरीतियों या कुप्रथाओं के जाल वैदिक विचार की प्रज्वलित ज्वालाओं में जलने लगे। समस्त आर्यजाति को म्लेच्छ बनाने के षड् यन्त्र वैदिक धर्म की महत्ता की अटूट चट्टान से टकरा-टकराकर टूटने प्रारम्भ हो गये। वाममार्ग की पक्की और सुदृढ सड़क वैदिक धर्म की बाढ़ में एक साथ बह गई। पराधीनता की बेड़ियाँ शीघ्रता से घिसने लगी। आर्यों का सदाचार पुनः हिमालय की भाँति ऊपर उठने लगा। आर्यों के पवित्र और उच्चतम विचारों ने जन-जन मानस में ऐसा विशुद्ध स्थान पाया कि जब कभी किसी कलह की दुर्घटना में निर्णय की आवश्यकता होती थी तब आर्यों की साक्षी ही उसका अन्तिम निर्णय मान लिया जाता था। आर्य समाज की वेदी से किये गये शास्त्रार्थ ऐसे सफल सिद्ध हुए कि पौराणिक पाखण्डों के सुदृढ दुर्ग थोड़े से ही झटकों में खण्डहर होने लगे। अनाथों और विधवाओं के करुण क्रन्दन, दीनों के चीत्कार और दलित जातियों के आर्तनाद सौहार्द और सेवा के विमलामृत से सर्वत्रशान्त हो गये। प्राचीन परम्परा के अनुसार स्थापित किये गये गुरुकुलों के ब्रह्मचर्याश्रमों से नवयुवक और नवयुवतियों के उच्च चारित्र्य की प्रभा ऐसी दमकी कि विधर्मियों का साहस चुंधिया गया। वैदिक धर्म के सत्य सिद्धान्तों का प्रचार विधर्मियों के विचारों पर यहाँ तक चढ बैठा कि उनके अन्धविश्वास के सुदृढ ग्रन्थिवाले भी ग्रन्थ शिथिल ग्रन्थी ही नहीं अपितु उनमें आमूलचूल परिवर्तन भी दिखाई देने

लगा। कौन नहीं जानता कि यदि स्वाधीनता के बृहद् यज्ञ में आर्य विचारों और प्रचारों की प्रबल आहूतियाँ न पड़ती तो भारत की स्वतन्त्रता का गौरव महात्मा गाँधी या कांग्रेस के नेताओं को को किसी भी प्रकार न भूषित कर पाता। स्वाधीनता के विमलामृत का पान करने के लिए आप भारत के समस्त सम्प्रदाय राजनीतिक पार्टी के रुप में अपना-अपना प्रतिनिधि भेजकर अपने अभ्युत्थान की सीढियाँ बना रहे हैं किन्तु आर्य समाज आज भी अपनी कोई मांग न करके स्वदेश हितार्थ परिव्राजक बना हुआ है। आज देश पर पुनः सङ्कटों के मेघ घुमड़ने लगे हैं। हमारी सीमाओं की सुरक्षा तो सङ्कट में पड़ ही गई है साथ ही स्वदेश का शासन भी भ्रष्टाचार की भ्रष्ट पद्धति पर अग्रसर होने के लिए मुड़ रहा है। आज घूस खोरी, चोरबाजारी, बेईमानी, दिनदहाड़े लूटमार का यदि एक ओर विकटताण्डव हो रहा है तो दूसरी ओर अनायास ही ईसाइयों का प्रसार, यवनों का उत्थान, डाकुओं का साहस, ठगों का जाल और विश्वास घातियों के विघातक आघात घोर कर्म के लिये पनप रहे हैं। विदेशी भाषा आज भी स्वदेश की साम्राज्ञी बनी हुयी है और भारत के सौभाग्य की सर्वस्व संस्कृति आँखों में आंसू भरे हुए है। विदेशी भाषा के जानकार वैभव विलास के सिंहासन पर आसीन हैं तो स्वदेश के अध्यात्मज्ञान के प्राण अपनी संस्कृति और सभ्यता के गौरव पण्डितजन दुःख और दारिद्रय के दिन काट रहे हैं। इधर देखिये नवयुवकों और नवयुवतियों के चरित्रों से खिलवाड़ करने वाले चलचित्र किस प्रकार अपना निर्लज्ज मुँह ऊँचा करके इतरा रहे हैं और दूसरी ओर चरित्र की रक्षा करने वाले ये वेद विद्या के केन्द्र गुरुकुल अपनी सरकार की सहायता के अभाव में किस प्रकार सिसक रहे हैं।

"जासु राजप्रिय प्रजा दुखारी, सो नृप अवस नरक अधिकारी"। आर्य बन्धुओ ! आज भी भारत के विश्वविद्यालयों में वेदों पर अनुसन्धान विदेशी डाक्टर कीथ और पिटर्सन की पद्धति पर हो रहे हैं और अपनी संस्कृति का मुख उज्जवल करने के लिये एक भी दयानन्द विश्वविद्यालय की योजना हमारे मस्तिष्क में नहीं है। मैं आपसे पूछना चाहता हूँ कि अपने अतीत के गौरव पर हमें स्वाभिमान क्यों नहीं ? ऋषि मुनियों की परम्परा पर हमारा प्रेम क्यों प्रमाद कर रहा है ? अपने उदार आदर्शों का हमारा हर्ष प्रकर्ष की कोटि से क्यों खिसक रहा है ? विश्व को जगाने का सन्देश अपने ही भारतीय प्रदेश में क्यों प्रसुप्त हुआ जा रहा है ? हमारी समृद्धि, हमारा उत्साह और हमारा साहस दूसरों के उपहास की क्यों प्रतीक्षा कर रहा है ? आर्य सन्यासियो ! आर्य विद्वानों ! आर्य बन्धुओं ! हमने थोड़ा सा इन शब्दो में अपना सिंहावलोकन किया है। बताइये हमारे साहसपूर्ण हृदय को क्या अभ्युत्थान की ओर दौड़ने के लिये अब भी किसी की प्रतीक्षा करनी है ? याद रखिये "विधिरपि बिभेति तस्मान्निरतिशयं साहसं यस्य" जान को हथेली पर रखकर कर्तव्य पथ की ओर दौड़ लगाने वाले से विधाता भी घबरा उठता है।

२- वैदिक--संस्कृति

ओ३म् सङ्गच्छध्वं संवदध्वं संवो मनांसि जानताम् ।
देवा भागं यथा पूर्वे सञ्जानाना उपासते ।।

संङ्गठन :–

विश्व की सभ्यताओं में पार्टीवाद, वर्गवाद या सम्प्रदायवाद का बोलबाला यह सिद्ध कर रहा है कि साथ चलना, साथ ही बोलना, एक दूसरे के मन के अनुसार व्यवहार करना वेद ही से चला हैं । किसी समय देवता लोग इसी सिद्धान्त को लेकर जब असुरों दैत्यों और राक्षसों से जूझे थे, तब उनकी विजय में इसी मन्त्र का जादू काम करता था । शनैः शनैः विश्व में छोटे बड़े आस्तिक और नास्तिक सभी ने इस सभ्यता को अपना लिया ।

अभिवादन :–

एक दूसरे के सम्मानार्थं आज जो जय राम जी की, नमस्कार, प्रणाम, नमस्ते, सलाम, गुडमोर्निङ्ग आदि सीख रहे हैं, वे भी "नमस्ते भगवन्नस्तु यतः स्वः समीहसे" इस वैदिक प्रक्रिया से उद्भूत हुए हैं । "अपि सुप्रभातं भवतः" यह वैदिक वाक्य आज भी गुडमोर्निङ्ग आदि की परम्परा को वैदिक पद्धति की ओर ही संकेतित कर रहा है ।

आतिथ्य :–

"मोघमन्नं विन्दते अप्रचेता सत्यं ब्रवीमि वध इत्स तस्य । नार्यमणं पुष्यति नो सखायं केवलाघो भवति केवलादी ।

यह मन्त्र विश्व के मनुष्यों को बता रहा है कि किसी को भी एकाकी होकर अन्न का उपयोग नहीं करना चाहिये अर्थात् गृहमेधी के गृह पर उपस्थित अभ्यागत के लिये आतिथ्य करना अनिवार्य है।

बालो वा यदि वा वृद्धो युवा वा गृहमागतः।
तस्य पूजा विधातव्या सर्वस्याभ्यागतो गुरुः ॥
उत्तमस्यापि वर्णस्य, नीचोऽपि गृहमागतः।
पूजनीयो यथायोग्यं सर्वस्याभ्यागतो गुरु : ॥

संसार में सर्वत्र ही किसी न किसी रूप में जो आतिथ्य मेहमानगिरी देखने में आती है, उसका मूल वैदिक मन्त्र ही कहा जाना चाहिये।

मधुर-भाषण :-

भूमण्डल के सभ्य समुदाय में आज भी मधुरभाषा के माध्यम से सर्वत्र पारस्परिक अभिनन्दन की प्रक्रिया पूर्ण की जाती है, उसका मूल भी "मधुमन्मे निष्क्रमणं मधुमन्मेऽस्तु भाषितमित्यादि" संस्कारों तक में विहित है। इसीलिये शुक्रनीति में भी--

ये प्रियाणि प्रभाषन्ते प्रियमिच्छन्ति सत्कृतम्।
श्रीमन्तो वन्द्यचरिता देवास्ते नरविग्रहाः ॥

ऐसा कहकर एक मधुर भाषण की सृष्टि का सर्जन किया है। यही सोचकर भगवान् कृष्ण ने भी गीता में :—

अनुद्वेगकरं वाक्यं सत्यं प्रिय हितञ्च यत्।
स्वाध्यायाभ्यसनं चैव वाङ्मयं तप उच्यते ॥

कहकर मधुर भाषा को जहाँ वाणी का तप कहा है, वहाँ चाणक्य

ने भी अपनी नीति में इसे यह कहकर कि :—

यदीच्छसि वशीकर्तुं जगदेकेन कर्मणा ।
परापवाद सस्येभ्यो गां चरन्तीं निवारय ।।

नीति का एक प्रमुख अङ्ग तक माना है ।

स्वच्छता :–

संसार के समस्त सभ्य समुदाय में स्वच्छता को एक विशिष्ट स्थान प्राप्त है, जो कि निवास स्थान की स्वच्छता, अपने शरीर की स्वच्छता आदि के रूप में वैदिक काल से ही प्रचलित है। वैदिक महर्षियों ने तो इसे यम नियमों में "शौच- सन्तोषतप:- स्वाध्यायेश्वर- प्रणिधानानि नियमा:" ऐसा कहकर एक विशिष्ट स्थान दिया हैं। इसीलिये स्मृतिकार भी पीछे नहीं रहें और उन्होंने भी :—

दृष्टिपूतं न्यसेत्पादं वस्त्रपूतं जलं पिबेत् ।
सत्यपूतां वदेद् वाचं मनः पूतं समाचरेत् ।।

अद्भिर्गात्राणि शुध्यन्ति, मनः सत्येन शुध्यति ।
विद्यातपोभ्यां भूतात्मा बुद्धिर्ज्ञानेन शुध्यति ।।

ऐसा कहकर एक विशिष्ट और अद्भुत आदर्श भी विहित कर दिया। वेदों में तो सन्ध्या अग्नि होत्र आदि के द्वारा एक नैत्यिक नियम तक प्रतिपादित है। कोई भी सभ्य फिर चाहे वह कहीं का भी निवासी, किसी भी वर्ण, वर्ग, पार्टी आदि का सदस्य हो यदि वह इस नियम की अवहेलना करता है तो निस्सन्देह निर्विवाद असभ्य ही समझा जाता है ।।

स्वाध्याय :-

इसी प्रकार स्वाध्याय अध्ययन करना पढना लिखना आदि तो सभ्य वर्ग का एक आभूषण ही है। इसके बिना तो सभ्यता मानों निष्प्राण विकल कलेवर ही मानी जायेगी। वैदिक पद्धति में तो एक उपनिषद् हीइसका पूर्णतया प्रतिपादन करती है और विशेष रूप से स्नातक हो जाने के पश्चात् भी "स्वाध्यान्मा प्रमदः,सत्यं वद, धर्मं चर, आचार्यदेवो भव" इत्यादि वाक्यों से वैदिक सभ्यता का एक विशिष्ट आदेश करती हैं। जिन समुदायों, सम्प्रदायों या वर्गों में अध्ययनाध्यापन का स्वरूप अनुपलब्ध है उन्हें आज विश्व के समस्त कोनों में असभ्य जाति कहकर पुकारा जाता है और उन्हें सभ्य बनाने के लिये एक सङ्गठित समुदाय द्वारा ही नहीं अपितु विश्व की समस्त सरकारों द्वारा भी विशेष प्रयत्न किया जाता है ।।

गुरुशिष्य परम्परा :-

यद्यपि भारत में आज इस परम्परा का विच्छेद दीख रहा है तथापि सर्वत्र आज भी पढने और पढाने वालों की पारस्परिक व्यवहार पद्धति एक ही प्रचलित है। उसमें एक दूसरे का सम्मान और एक दूसरे की आवश्यकता पूर्ति तथा आचरण सरणि सर्वत्र देखी जा सकती है। संसार के किसी भी भाग में गुरु शिष्यों की सभ्यता, शिक्षा, और उनकी स्नेहवृत्ति का लगभग एक सा ही स्वरूप दृष्टिगोचर होगा,इसीलिये शास्त्रकारों ने गुरू महिमाको लेकर

अज्ञान तिमिरान्धानां ज्ञानाञ्जन शलाकया ।
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्री गुरवे नमः ।।
एते वेदोदिताः सर्वे पुरुषार्थाश्चतुर्विधाः ।
गुरुभक्तस्य हस्तस्था भवन्त्यत्र न संशयः ।।

अपने विचार व्यक्त किये हैं । श्री कबीर तो यहाँ तक कह बैठे कि-

गुरु गोबिन्द दोऊ खड़े काको लागूँ पाय ।
बलिहारी गुरु आपने गोबिन्द दियो बताय ।।

वेद ने भी :—

"सहनाववतु सह नौ भुनक्तु सह वीर्य करवावहैं । तेजस्विना वधीत-मस्तु मा विद्विषावहै" कह सृष्टि के आदि में इसी की महिमा का स्मरण कराया है ।

मातृ-पितृ और पुत्र की आचार संहिता—

कस्य नूनं कतमस्यामृतानां मनामहे चारू देवस्य नाम ।
को नो मध्या अतितये पुनर्दात्पितरं दृशेमं मातरञ्च ।।

इस ऋग्वेद के मन्त्र के अनुसार हमें पुनर्जन्म और मुक्ति से निवृत्ति को लेकर माता-पिता और पुत्र के सम्बन्ध में एक नये प्रकार की आचार संहिता देखने को मिलती है, "मातृमान् पितृवान आचार्यवान् पुरुषो वेद" इन ब्राह्मण ग्रन्थों के वचनानुसार जो वर्णाश्रम मर्यादा प्रस्तुत की गई है वह आज भले ही विश्व में न हो किन्तु उसका सूक्ष्म स्वरूप तो सार्वभौम होकर ऐसा व्याप्त हो गया है कि उससे छुटकारा नहीं । पढने वाले, रक्षा करने वाले, धन कमानेवाले और सेवा करने वाले इन चार भागों में आज भी संसार बँटा हुआ है

और व्यवहारभी–पढाने वाले को शिक्षक चाहे फिर वह किसी भी जाति या वर्ग आदि का हो अवश्य कहेगे। ऐसे ही रक्षक, धनपति और सेवक आदि भी कहे जाते हैं। ब्रह्मचर्याश्रम न होने पर भी पढने का विभाग, गृहस्थाश्रम की मर्यादा के अभाव में भी गृहस्थी, वानप्रस्थ आश्रम न होंने पर भी वूदों का विश्राम, सन्यासाश्रम के अभाव में भी साधुओं का प्राचुर्य समस्त सम्प्रदायों में पाया जा रहा है। अत: 'ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहूराजन्य: कृत:" आदि का वैशिष्ट्य आज भी किसी न किसी सभ्यता के रुप में जीवित है ही इसी प्रकार भूरता वीरता गम्भीरता, औदार्य, सौजन्य, कृतज्ञता, तितिक्षा, क्षमा, विश्वस्तता, भक्ति, अनुरक्ति, विरक्ति स्वदेश भक्ति आदि-२ गुणगौरव और आदर्श मर्यादाओं की सुशिक्षा प्राचीन सभ्यता से ही प्रसूत होकर आजतक पल्लवित पुष्पित और फलित हो रही है। प्रस्तुत निबन्ध में उन्हीं सभ्यताओं का दिग्दर्शन कराया गया है जो सार्वभौम हैं। और जो कि निर्विवाद निस्सन्देह सुनिर्णीत है। उक्त सम्यताओं की वैदिक पद्धति में किसी की भी आपत्ति न मिलेगी। इतने पर भी कुछ विद्वानों का विचार है कि आज की नवीन सभ्यता जिसमें हम खान पान, रहन-सहन वेश-भूषा, भाषण–सरणि, व्यवहार प्रक्रिया आदि की जो नवीनता देख रहे हैं उसमें हमें उदारता पूर्वक पश्चिम सभ्यता को न भूलना चाहिए। इसमें कोई सन्देह नहीं कि प्रत्येक वस्तु की आकृति या बाह्य स्वरुप में परिवृत्ति होती रहती है और उस परिवर्तन पद्धति में किसी न किसी का हाथ अवश्य रहता है किन्तु उसकी अन्तरात्मा का शाश्वत प्रवाह तो हमें देखना ही पड़ेगा कि वह कहां से उद्भूत हुआ है। हम पाश्चात्य सभ्यता के कृतघ्न नही बनना चाहते किन्तु

यह सोचने में क्या क्षति है कि उस सभ्यता का वैभव किसके प्रभाव में पला हैं ? प्राचीन काल–नहीं नहीं वैदिक काल के ध्वंसावशेषों, उस काल के ग्रन्थों और उस समय की परिपाटी का तुलनात्मक अध्ययन करने पर यही निश्चय करना पड़ता है कि Go back to the Vedas हमें पीछे मुड़ना चाहिए। यदि ऐसा नहीं तो बताइये महोञ्जोदड़ो की खुदाई के पश्चात् जो निष्कर्ष निकला है उसमें वैदिक काल की प्रशंसा क्यों की गई है ? पुरातत्व नेताओं के वर्षों के अनुसन्धान के पश्चात् जो वैदिक सभ्यताओं के स्वरूप अद्भुतालयों में आज भी सुरक्षित हैं- उनका आप क्या करेंगे ? मैक्समूलर डा. कीथ, डा. पार्जीटर आदि के द्वारा किये गये अनुसन्धानों से वेद की प्राचीनता सिद्ध हो जाने पर उस समय की वैदिक सभ्यताओं का स्वरूप आज भी विश्व में देखकर क्या विद्वज्जन वैदिक संस्कृति का मूल होना, उन्हें एक स्वर से स्वीकार न करेंगे ? क्या कोई यह भी सोच सकता है कि आज शव का अग्नि संस्कार यदि बिजली की भट्टी में या भूमि में गाडकर अथवा जल में प्रवाहित करके होता है तो वह वैदिक काल में पड़ा-पड़ा कलाबाजियाँ खाता रहता होगा ? अन्तर इतना ही है कि उस समय घृत सामग्री चन्दन के द्वारा उसे रोगनाशक कीटाणुनाशक पद्धति से संस्कृत किया जाता था और आज उसके स्वरुप में परिवर्तन हो गया है।

इसी प्रकार सैकड़ों अन्य भी आज की बातों पर सोचा जा सकता है।

—•—

३- भारतीय-संस्कृति

विश्व का नियन्त्रण आज ऐसे हाथों में है जो प्रकृतिवादी है। संसार का उपभोग करना ही जिनका लक्ष्य है। प्रत्येक क्षण क्षणिक सुख की उपासना ही जिनका आराध्य विषय है। भौतिक चकाचौंध का क्षणिक विलास ही जिनका अभिन्न साथी है। अचिर विलासिनी अचिर रोचि के समान मुहूर्तभर चमकने वाली चला अर्थात् लक्ष्मी के ललित विलास और हास पर सर्वस्व समर्पण कर बैठना ही जिनका सर्वस्व दक्षिण यज्ञ है और जिनके दिमाग में यह खफ्त घर कर बैठा है कि प्रकृति की देन, शृङ्गार की मूर्ति, रमणीयता की जननी, जीवन के माधुर्य की मन्दाकिनी सांसारिक सुखों की सुमहत्सरिता और शरत्कालीन स्वच्छ व्योम की मधुर वीथी में विहास करने वाले पूर्णशशाङ्क की विस्मय जननी शोभा को भी चैलेञ्ज देने वाली नर मणि रमणी ही विश्व की सार है और पौराणिकों की यह आख्यायिका तो पागल खाने की उपज है कि सुरासुर, गन्धर्व, किन्नर, इन्द्र, विष्णु और देवाधिदेव महादेव आदि के द्वारा मन्थन करके सागर से अमृत निकला है और ये आर्य लोग भी मूर्खता की ही सीढियों पर चढ रहे हैं जो यह कहते हैं कि प्रत्येक प्रकार की कठिन से कठिन भी कामनाओं को पूर्ण करने वाला विश्व की समस्त समस्याओं का मूर्तिमान समाधान, वायुमण्डल को दूषित कृमियों से स्वच्छ करके स्वास्थ्यजनक वातावरण के द्वारा दीर्घायु प्रदान करने वाला भौतिक यज्ञ और यम नियमों के सहित जपादि के द्वारा आध्यात्मिक यज्ञ ही विश्व का सर्वश्रेष्ठ अमृत है। नहीं तो उसी समय के हमारे किसी साथी ने

ऐसा क्यों कह डाला कि :—

अमृतं नाम यत्सन्तो मन्त्रजिह्वेषु जुह्वति।
शोभैव मन्दर क्षुब्ध क्षुभिताम्भोधिवर्णना ॥

और फिर जिन्होंने ऋणं कृत्वा घृतं पिबेत् का मन्त्रजाप ही अपने पुण्य व्रत का अनुष्ठान बनाया हुआ हैं। विश्व का शोषण ही जिनकी कूटनीति का तत्व है। बड़े-बड़े सभ्य राष्ट्रों के टुकड़े-टुकड़े करके जैसे भारत का पाकिस्तान और- गोया चीन का फार्मोसा (कम्पुच्या), अरबों का फिलिस्तीन तथा जर्मनी के चारभाग और इतना ही नहीं सैनिक सन्धियों के द्वारा दूसरे शान्त देशों के सिर में दर्द पैदा करते हुए शक्ति सन्तुलन की पूर्ति का बहाना लेकर मध्य योरोपीय प्रदेशों में आधुनिक अस्त्र शस्त्र सुसज्जित सेनाओं को भेजकर विश्वशान्ति का गला घोंटना चाहते हैं, कोई वियेटनाम, हंगरी में कत्ले आम कर रहा है तो कोई मिश्र रोडेशिया में स्वेज नहर को गोरेकालों की समस्या का नाम लेकर परस्पर भेद की दीवार खड़ी करके वायुयानों द्वारा बम बरसाकर मानवता के सर्वनाश पर तुल रहे हैं। कोई भारत की सीमापर निर्दोष नागरिकों पर अपनी निर्दयता का कवच पहन कर तोपों और मशीन गनों से बम बरसा कर उन्हीं की स्त्रियों के साथ बलात्कार करके अमानुषिक नृशंसता और क्रूरता का परिचय दे रहे हैं, तो कोई तिब्बत में शान्ति के नाम पर वहाँ के निवासियों को निष्कारण ही अपनी पूर्णदासता के बन्धन में जकड़ने के लिये चूस-चूस कर मृत्यु के घाट उतार रहे हैं। इतने पर भी विश्व के स्वास्थ्य के साथ खिलवाड करने वाला ग्रीष्म वर्षा शरत् आदि ऋतुओं के अकृत्रिम क्रम का कारटून बनाने वाला, आनेवाली पीढियों को अङ्गभङ्ग करके उनकी इन्द्रियों की स्वाभाविकता के साथ आंखमिचौनी खेलने

वाला उद्जन बमों और ऐटम बमों का निर्लज्ज परीक्षण मानवता को मुस्करा मुस्कराकर चिढा रहा है। कहीं भारत के भूभाग काश्मीर और भारत की नहरों के जल पर भूठमूठ ही अपना दावा करता हुआ पाकिस्तान का लक्ष्य विश्व के सन्त्रस्त प्राणियों को अभयदान देने वाले विश्वशान्ति का क्षेत्र निर्माण करने वाले भारत पर अमेरिका की सैनिक सहायता को रुकवाने का कहर बरसाकर दानवता का मनोरञ्जन कर रहा है तो कहीं अलजी-रिया के राष्ट्रवादियो को विद्रोही कहकर उनकी स्वाधीनता की माँग का उपहास किया जा रहा है। कहीं इन्डोचाइना में वज्रपात हो रहा है तो कहीं अफ्रीका में पुनः उपनिवेशवाद को जीवन दान देने गोरे और काले के विचार भेदन ने अत्याचार के भी दुर्दमनीय दर्प का दलन करने के लिये कमर कसी हुयी है। ऐसे अवसर पर मानवता के घावों पर मल्हम लगाने के लिये, एकता पर की गई भेद भावना की चोट पर विचार शीलता का अचूक लेप करने के लिये, सहृदयता की छाती में छल प्रयोग का छुरा भोंकने की पीड़ा पर औदार्य की पट्टी बाँधने के लिये, स्वाधीनतापूर्वक परस्परकी सहयोग समृद्ध समुन्नति के पेट पर स्वार्थपूर्ण कपटों के कठोरपाद प्रहार करके जो घोर यातना का साम्राज्य बढाया जा रहा है उसकी रोकथाम के लिये बिना भारतीय संस्कृति से संधि किये काम नहीं चल सकेगा। "आवश्यकता की वृद्धि ही कला की समुन्नति का सुखद क्षेत्र है" का नारा लगाने वालों को आवश्यकता की समाप्ति ही परस्पर होड़ के संङ्घर्ष के निपटारे का मूल मन्त्र है "उसी की दीक्षामें कल्याण है" का प्रचार किये बिना शान्ति नही मिलेगी। Go back to the Vedas का यदि रास्ता शीघ्र ही

नहीं बताया गया तो राही को भटकने के सिवाय और कोई चारा नहीं। भारतीय पञ्चशील का सन्देश यदि विश्व नहीं मानेगा तो उसे भावी भयावह विनाश को देखने के लिये ही जीवित रहना पडेगा। अतः संसार को वेद का यह मन्त्र अब भी सुन लेना चाहिये :—

ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्य स्विद्धनम्॥

हे संसार के पुरुषों! यह सारा संसार परमपिता परमात्मा ने तुम्हें भाई-भाई बनाकर रचा है। यह किसी एक का नहीं। उसने जिसे धर्म पूर्वक व्यवहार करते हुए सामाजिक उन्नति के आधार पर जो दिया है, उसी में सन्तोष करो। लालच न करो। आँख मिचते ही यह सारा धन किसी का नहीं। "शतहस्त समाहर सहस्र हस्त संकिर' देख सौ हाथों से कमा और हजार हाथों से दे, नहीं तो केवलाघो भवति केवलादी" अकेले उपभोग करने से तू अकेला महापापी बन जायेगा और दस्युओं का गिरोह तेरा गला अवश्य घोट डालेगा।

"कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः" कर्म करता हुआ ही जीने की इच्छा कर। "यस्तु सर्वाणिभूतान्यात्मैवा भूद्विजानतः। तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यत":- यदि तू सारे संसार की आत्माओं को अपनी ही आत्मा में देख रहा है तो तुझे एकत्व की पुण्य भावना में शोक मोह और क्लेषादि का अवसर ही कहाँ है? "न सखा सख्युः प्रमिणाति संगिरम्" मित्र-मित्र के वचनों को नहीं तोड़ता। तूने जिस राष्ट्र से जो मित्रता का हाथ बढाया है, उसे

धोखा मत दे। "उच्छ्रयस्व महते सौभगाय" पारस्परिक उन्नति का ध्यान करके ही आगे बढने का प्रयत्न कर, नहीं तो "शिवासः सन्तो अशिवा अभूवन्" मङ्गल के मार्ग पर दौड़ते हुए भी अमंगल के मार्ग पर दौड़ते मिलोगे और यही पुकारते पाओगे कि- 'ऊर्ध्व बाहुर्वि-रोम्येष नच कश्चिच्छृणोति मे" मैं तो भुजायें ऊपर उठा कर रो रहा हूँ पर कोई सुन ही नहीं रहा और भगवान तो यहाँ तक कह रहे है कि "इमाः प्रजाः प्रजनयन् मनूनाम्" मैंने इस समस्त जगत् को तुम मनुष्य के ही लिए बनाया है। "मा भ्राता भ्रातरं द्विक्षत् मा स्वसारमुत स्वसा" अतः संसार के तुम सब मनुष्य भाई-भाई हो परस्पर घृणामत करो। "सदुघा पृथिवी सुदिना मरुद्भ्यः" इस पृथ्वी का सबको मिलकर उपभोग करना चाहिए।

अब पाश्चात्य संस्कृति को भारतीय संस्कृति के चरण पकड़ने में जरा भी सङ्कोच नहीं होना चाहिए। विश्व को अपनी व्याकुलता भारतीय अध्यात्म विज्ञान की श्रद्धापर भेंट कर देनी चाहिए। अब नूतन विज्ञान को वैदिक विज्ञान के साथ समझौता कर ही लेना चाहिए। नवीन सभ्यता को भारतीय पुरातन सभ्यता के साथ मित्रता करने में विलम्ब न करना चाहिए।

४-

"समाजवाद और विश्वशान्ति"

ओ३म् मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे ।।

वेद के इस मन्त्रभाग में कहा गया है कि हम सब परस्पर एक दूसरे को मित्र की दृष्टि से देखें। मैं यदि इस मन्त्र को समाजवाद और विश्वशान्ति का संयोजक सूत्र कह दूँ तो मेरे विचार में आपको कोई भी आपत्ति न होगी । समाजवाद जहाँ सज्जन समुदाय के ऊर्जस्वी सौजन्य का साम्राज्य चाहता है वहीं विश्वशान्ति विश्व की कलुष कान्ति को समाजवाद की निर्भ्रान्ति से दूर करने के निमित्त आन्तरिक समझौते के लिये लालायित रहती है। यदि कुछ गम्भीरता के साथ विचार किया जाये तो भावात्मक पर्यायवाची बनकर समाजवाद और विश्वशान्ति शब्द एक दूसरे के पूरक से प्रतीत होंगे। उस समय एक का स्वरूप दूसरे के निरुपण में अपनी निपुणता दिखाता दीखेगा। विश्वशान्ति के लिये जहाँ पञ्चशील पञ्चों के समान मानव की असमानता को निरुन्नत करने के लिये समुत्सुक है, वहाँ समाजवाद भी पाँच उद्देश्यों को लेकर उसी प्रकार अपनी निर्विकारता के लिये कटिबद्ध है। पञ्चशील में सर्व प्रथम अनाक्रमण सन्धि या अनाक्रमण नीति पञ्च यमों में अहिंसा की प्रतीक है तो एक दूसरे की राष्ट्रीय सत्ता और प्रभुसत्ता के प्रति आदरभाव सत्य का प्रतिनिधि है। किसी के आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप न करना यदि अस्तेय का स्थानी है तो समानता के भावों की दृढता तथा पारस्परिक लाभ ब्रह्मचर्य

पद्धति के अनुगामी हैं । शान्तिपूर्ण सहअस्तित्व अपरिग्रह का ही स्वरूप है । इसी प्रकार समाजवाद के लिये भी प्रत्येक व्यक्ति अपनी योग्यता, अपना परिश्रम, अपनी आवश्यकता, समाज और राष्ट्र के प्रति अपनी आस्था, इन पांच सूत्रों से प्राबद्ध है । अपनी योग्यता के अनुसार पाने वाला हिंसा को कभी भी जन्म नहीं दे सकता । परिश्रम पूर्वक लाभ लेनेवाला वास्तविक सत्य पद्धति का ही संस्थापक है । अपनी आवश्यकता के आधार पर समान वितरण की कसौटी कसने वाला कभी भी स्तेय अर्थात् चोरी के अपराध का पात्र नहीं बन सकता । समाज और राष्ट्र की आस्था वाला प्रकारान्तर से राष्ट्र शक्ति के संरक्षण में तथा सामाजिक जीवन के सदुपयोग में ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह व्रत का ही पालन कर रहा है । देखिये–वेद भी यही कह रहा है– "सं गच्छध्वं सं वदध्वं सं वो मनांसि जानताम् । देवा भागं यथा पूर्वे सञ्जा–नाना उपासते ।। "हमारे मानसिक भाव समान हों, हमारा आगे बढना समान हो, किन्तु अपनी योग्यता और परिश्रम का भाग हमें लेना चाहिए । "शतहस्त समाहार सहस्र हस्त संकिर"– सौ हाथ से कमाओ और हजार हाथ से दो । ऐसा नहीं कि सब धन एक पसेरी हों, अन्धेर नगरी गवर्गण्ड राजा, टके सेर भाजी टके सेर खाजा हो । हमें राष्ट्र के समाजवाद को पञ्चशील के साथ पूर्णतया अनुप्राणित करना होगा । यदि समाजवाद की स्थापना के अनन्तर भी असन्तोष का रोष व्यक्त हो रहा है तो निस्सन्देह उसमें पक्षपात का क्षीण कक्ष कहीं अवश्य ही खुला रह गया है । वेद इस न्यूनता को समाप्त करने के लिये उद्घोष कर रहा है कि— अन्योऽन्य-मभिहर्यत. वत्सं जातमिवाघ्न्या, परस्पर इस प्रकार एक दूसरे से स्नेह करो, जिस प्रकार अपने भूखे बच्चे को देखकर गाय के स्तनों

की दुग्धधारा बछड़े के जीवन की आधार बन जाती है। समाजवाद का स्वरुप यदि विश्व शान्ति की क्षमता नहीं रखता तो वह एक दिन लड़खड़ाकर धड़ाम से गिर पड़ेगा। इसलिये उसका स्वरुप :—
समानी प्रपा सह वो अन्नभागः समाने योक्त्रे सह वो युनज्मि। सम्यञ्चोऽग्निं सपर्यतारानाभिमिवाभितः ।। अर्थात् हमारा सबका उदर पूर्ति का साधन अन्न समान स्वरुप से वितीर्ण होना चाहिये। घर की स्वच्छता और जीवन का अङ्गभूत जल सङ्कुचित और घृणावृत्ति का प्रतीक नहीं बनाया जा सकता। सामाजिक जीवन की आवश्यकतायें उदारता के साथ यदि पूर्ण की जायेंगीं तो हम में कोई भी चोर, दस्यु, लुण्ठक और भ्रष्टाचारी नहीं बन सकेगा। यदि समाजवाद के नामपर धनवान धनी बनता जायगा और निर्धन दरिद्र होता जायगा तो निस्सन्देह वह विश्व की अशान्ति का जनक बनकर रहेगा और वह समाज शशश्रृङ्ग बनकर ही रह जायगा। खपुष्प ही कहलायेगा और कमठी का स्तन होकर अपनी सत्ता खो बैठेगा। मेरा तात्पर्य यह नहीं है कि राष्ट्र की प्रजा अपनी समस्त सम्पत्ति का सत्वर राष्ट्रियकरण कराले किन्तु यह भी तो प्रतीक्षा की परीक्षा का विषय नहीं कि अत्यावश्यक राष्ट्र-हितोपयोगी कार्य राष्ट्रियकरण के स्वयंवरण से नितरां वञ्चित रहें। आज यह कौन नहीं जानता कि छोटे-छोटे समुदायों का पार्थक्य अपनी प्रवल शक्ति का पुञ्ज नहीं बन सकता। अलगाव और असहयोग का स्वांग जीवित नहीं रह सकता। आज विश्व सिमटकर परिवार की तरह बनने के लिये आतुर हो राहा है। आज के विज्ञान ने सङ्कुचित वृत्ति के अज्ञानान्धकार को विच्छिन्न

करके जहाँ स्थान की दूरी को कम कर दिया है वहाँ हृदय की दुर्दमनीय दूरी को भी दूर करने के लिये वह आगे बढ रहा है। एक दिन था जब अमेरिका का पता लगाने के लिये एक साहसी कोलम्बस की आवश्यकता थी, किन्तु आज तो विश्व का चप्पा-२ मानव की पहुँच में चिपट सा गया है। हम एक दूसरे की छोटी-छोटी घटनाओं को भी क्षणभर में विश्व के किसी भी कोने से जानने में समर्थ हो गये हैं। तब बताइये समाजवाद के बन्धुत्व का नाता कबतक अनुदारता के बन्धन में टँगा रह सकता है? संसार का स्वभाव परिवर्तनशील है उसे किसी दुराग्रह रज्जु की बेड़ियाँ नहीं पहनाई जा सकती। वस्तुतः जनसमुदाय की अशान्ति ही क्रान्ति की जननी है। आन्तरिक असन्तोष ही समस्त दोषों का मूल है। सबल से निर्बल का शोषण ही रोष की धधकती ज्वालाओं का समृद्ध इंधन है। असमानता और ईर्ष्या द्वेष की जन्म भूमि हैं। पारस्परिक रंगभेद, साम्प्रादायिक संकोच यह सभी विद्वेष के उत्कोच की सृष्टि करते रहते हैं। जब तक घृणा का घोर सघन घटाटोप सामाजिक विचार के पावन पवन प्रवाह से विघटित न हो जायगा, विश्वशान्ति त्रिशङ्कु की तरह लटकी रहेगी और समाजवाद पूँजीपतियों और साम्राज्यवादियों के द्वार पर द्वारपाल के समान बद्धाञ्जलि होकर अपना मस्तक नवाये रहने के ही लिये जीवित रहेगा।

क्या आप यह चाहते हैं कि वह दास प्रथा फिर लौट आये जिसमें उन्हें भूखों रखकर कड़कती गरमी में कोडे मारमारकर थकावट से चूर होने पर भी काम करने के लिये बाध्य किया जाता

था ! और उसके प्रतिकार कर्ता लिङ्कन को बलिवेदी पर चढा दिया जाये। क्या आपकी यह इच्छा है कि आज के सभ्य युग में भी रंग भेद की सभ्य प्रवृत्ति अपने आपे से बाहर होकर कनेड़ी सरीखे उदार हृदय का दु:खद अन्त कर दे ? क्या आप यह पसन्द करेगें कि विश्व की शान्ति में चारचाँद लगाने वाले समाजवाद की मर्यादा का मुख उज्जवल करने वाले महामना ख्रुश्चेव जैसे भी पदच्युत कर दिये जाये ? क्या आपके विचार यह स्वीकार करने के लिये कटिबद्ध हैं कि उग्र साम्प्रदायिकता का उन्माद पूर्वी पाकिस्तान से निरीह, निरपराध, निर्लेप शान्त शरणार्थियों को गृहविहीन करके उनकी बिवशता के साथ सती साध्वियों की लज्जा लूट-लूट कर खिलवाड़ की जाय ? क्या आपको यह अच्छा लग सकेगा कि अपने ही देश के कुछ करोंड़पति अपने कोड़ीपति भाइयों की तड़फती उदरज्वाला के साधन अन्न को बेदर्दी के साथ छिपा कर अकाल में ही अकाल डालकर कराल काल का कवल बनाने के लिये निर्धनता से उपहास करें।

हमें विश्वशान्ति के लिये समाजवाद और समाजवाद के लिये विश्वशान्ति के साधन ढूँढने ही पडेंगे। आज नहीं तो कल यह बुलावा आपके द्वार पर सुनाई अवश्य ही पड़ेगा। इसलिये: —

काल करे तो आजकर आज करे सो अब।
पल में परलय होयगी बहुरि करेगा कब॥

—o—

स्थायी स्वाधीनता का मूलः—

५- प्राचीन-भारतीय-संस्कृति

यह ठीक है कि आज के युग ने बन्दूकों मशीनगनों तोपों और एटमबमों से समझौता कर लिया है। जिसके हाथ में लाठी रहती है, भैंस उसी की हो जाती है—Might is Right का सिद्धान्त आज मस्तक ऊँचा उठाकर इठला रहा है। जर्मनी ने आधुनिक वैज्ञानिक सैन्य शक्ति के बल पर मित्र राष्ट्रों के देखते देखते पोलेण्ड को दे पटका, फ्रांस के धुर्रें उड़ा दिये, रूस को फूँस की तरह फूँकने खड़ा हो गया। उस समय ब्रिटेन के पास केवल १९ टैङ्क थे। इटली ब्रिटिश सुमालीलैण्ड के टुकड़े-टुकड़े कर रहा था, उधर पूर्व में जापान था। एक के बाद एक-एक द्वीप को निगले जा रहा था संसार देख रहा था कि महात्मा गाँधी का हिटलर को प्राचीन संस्कृति की अहिंसा का उपदेश सफल न होकर खिसिया रहा है। ऋषि मुनियों की परम्परा प्रसूत सभ्यता झेंप रही थी, संस्कृतिका मुंह उतर गया था, इस युग ने सिद्ध कर दिया था कि शक्ति सिद्धान्त में संस्कृति का हस्तक्षेप असह्य है। परन्तुः—

"नीचैर्गच्छत्युपरि च दशा चक्रनेमिक्रमेण" के अनुसार संसार ने एक दिन आँखें फाड़ फाड़कर देखा कि शक्ति के सिद्धान्त में फूट पड़ गई। एक ही एटमबम ने सबका निर्णय कर दिया, शक्ति से शक्ति टकराकर नष्ट हो गई। परन्तु उसी के पास चीन ने जापान की प्रतिक्रिया में और पूर्वी जर्मनी ने मित्रराष्ट्रों की प्रतिक्रिया में कम्युनिज्म के साम्यवाद को जन्म दे दिया।

इधर महात्मा गाँधी जी की प्राचीन संस्कृति के मुख पर हर्ष की रेखाएँ दौड़ गई। अहिंसा का युद्ध सफल हुआ, ब्रिटिश की तोपों और मशीनगनों की छत्रछाया में पलने वाली ब्रिटिश शक्ति का मुँह फक्क हो गया। भारत दासता के बन्धनों से मुक्त हो गया। संसार के लोग भले ही यह कहें कि अंग्रेजों की निर्बलता के कारण भारत स्वाधीन हुआ पर यह तो सबको ही मानना पड़ेगा कि यदि हम मानवता के बलपर संगठित न हुए होते तो इस सुअवसर से चूक जाते। ब्रह्मा और लंका को भी हमारी इस परिस्थिति से लाभ हुआ।

यह बात आज की ही नहीं है अपितु भगवान् राम के समय में भी एक बार शक्ति के सिद्धान्त ने सिर उठाया था परन्तु राम ने केवल बन्दरों की सेना लेकर ही उसका गर्व चूर-चूर कर दिया था। समुद्र का पुल बांध चुकने पर विभीषण के द्वारा राम का दर्शन होने पर जब राम ने कहा कि "लङ्काधिपतिर्भूया" सुग्रीव बोले—भगवन्! यदि रावण भी आकर आपके चरणों में प्रायश्चित करे तब लङ्काधिपति कौन होगा? राम ने कहा मैं कभी भी अवहेलना नहीं कर सकता, उसे तो मैं अयोध्याधिपति बना दूंगा और मैं स्वयं तपस्वी रह जङ्गलों में ही तप करूंगा— यह थी भारत की प्राचीन संस्कृति।।

इतना ही नहीं भगवान् कृष्ण कंस को पछाड़ देते हैं। और स्वयं राज्य न हडप कर उसे उसके पिता उग्रसेन को सौंप देते हैं।

रघुवंश में महाकवि कालिदास रघु की दिग्विजय के प्रसंग में लिखते हैं कि :--

"श्रियं महेन्द्रनाथस्य जहार न तु मेदिनीम्" अर्थात् महाराजा रघु ने महेन्द्रनाथ को जीतकर यज्ञ के लिये धन तो अवश्य लिया परन्तु उसके जीते हुए राज्य को नहीं। ऐसे एक दृष्टान्त नहीं प्राचीन कालीन स्वर्ण युग के सहस्रों दृष्टान्त दिये जा सकते हैं।

संसार के इतिहास के पन्ने इस बात के साक्षी हैं कि जो कार्य महात्माओं ने हमारी प्राचीन परम्पराओं में पालित और पोषित संस्कृति के आधार पर किये हैं उन्हें शक्ति के सिद्धान्त ने न किया है न कर सकने को आगे सामर्थ्य है।

महात्मा बुद्ध के पास कौन सी तोपें थीं महात्मा शंकराचार्य के पास कौन सी मशीन गनें थीं, महर्षि दयानन्द के पास कौन से एटमबम थे, और इस युग की विभूति महात्मा गांधी के पास कौन सी सैन्य शक्ति थी ? महात्मा ईसा ने फाँसी के तख्ते पर झूलकर भी ईसाइयत की जड़े पाताल तक पहुँचा दीं। अरस्तू और सुकरात के यश ने फकीर होते हुए भी संसार से अपना लोहा मनवा लिया।

इंगलेण्ड की पार्लियामेन्ट में क्विक इन्डिया "Quick India" का नारा लगाने पर महात्मा गान्धी को गिरफ्तार करते समय एटली ने ठीक ही कहा था कि इतना डर मुझे हिटलर के इंगलेण्ड को तोड़ने वाले विमानों से नहीं है जितना शस्त्रों के बिना भी

इस गान्धी से है । सच तो यह है—
साधुसराहे साधुता, जती जोखिताजान । रहिमन सांचे सूर की वैरिहुं करे बखान । चर्चिल ने भी ठीक ही कहा था कि "हमें अफ्रीका के लीविया प्रदेश में जो विजय अन्त में मिली है उसका कारण भारतीय वीरों का केवल चने खाकर कई-कई दिनों तक लडना है । हमारे सैनिक मेवा खाकर भी इतने चुस्त इसलिये नहीं थे कि वे वैसी संस्कृति में ही नहीं पले ॥ " यह है भारतीय प्राचीन संस्कृति का जादू जो सात समुद्र पार करके चर्चिल के सिर पर चढकर बोल उठा ।

औरङ्गजेब जिस समय तास्सुब में भी भारतीय संस्कृति से खिलवाड़ कर रहा था, शिवाजी उसी समय उसकी लड़की रोशन आरा को अपने अधिकार में आया हुआ देखकर भी उसकी छवि से अपनी माता की छवि को स्वकल्पना प्रसूत कर रहे थे ।

क्या संसार में कोई कह सकता है कि चित्तौड़गढ में बारह सौ रानियों ने जौहर व्रत करके तत्कालीन पाशविक शक्ति के मुँह पर थप्पड़ मारा था, वह भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता का वैभव नहीं था ? झांसीबाई यवनकालीन अत्याचारों की पराकाष्ठा की दुर्जय पीठ पर राजपूत क्षत्राणियों ने जो अपने कीर्तनीय शौर्य का प्रदर्शन किया है, क्या उसने भारतीय स्वाधीनता की संस्कृति को जीवित नहीं किया है ? १२ वर्ष के वीर हकीकतराय ने अपनी गरदन पर तलवार खाकर, गुरू गोविन्द सिंह के दो बाल सपूतों ने दीवारों में चुने जाकर, दाहर की दो पुत्रियों ने दौड़ते हुए घोडों की टाँगों

से अपनी टाँगें चिरवाकर, हैदराबाद के धर्म युद्ध में वेङ्कटराव नें अपने सुकोमल पैर के तलुओं में कीलें ठुकवाकर जो स्वदेश की स्वाधीनता को प्रचीन संस्कृति के गौरव का परिचय दिया है क्या वह किसी भी स्वदेशाभिमानी के लिये गर्व की वस्तु नहीं है।

तब मुझे गर्व से कह लेने दीजिये कि आज भी स्वदेश की स्वाधीनता को स्थायी रखने के लिये, भ्रष्टाचार को भ्रष्टता से उद्धार पाने के लिये, अत्याचार, अनाचार और दुष्टाचार के सन्ताप से त्राण पाने के लिये, सुरसा के समान मुँह फाड़ कर देश की ईमानदारी को निगलने वाली घूसखोरी को फाडकर टुकडे-टुकडे कर देने के लिये, देश के साथ गद्दारी करने वाले पाँचवे कालम के सदस्य उद्दाम दानवों का दर्प दलन करने के लिये प्राचीन भारतीय संस्कृति अनिवार्य है।

इतना और कहलेने दीजिये कि स्वाधीनता का धैर्य दूषित मनोवृत्तियों से यदि मैला हुआ चाहता है, सत्य का गला घोंटने के लिये पाखण्ड ने यदि कमर कसी है, सार्वभौम "वसुधैव कुटुम्बकम्" के सिद्धान्त को यदि तुच्छ साम्प्रदायिकता पूरना चाहती है, सच्चरित्रता से स्पर्धा करने वाली यदि- कुचिन्तन वृत्ति ने अपना आपा प्रबल कर लिया है तो प्राचीन भारतीय सस्कृति को ही अपनाना होगा,

यह ऋषि मुनियों का देश है। इसके सौ भाग्य ने महात्मा गांधी की अहिंसा से पाणिग्रहण किया है ॥

—●—

६– जनतन्त्र

ओ३म् समानी व आकूतिः समाना हृदयानि वः । समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति ।।

इस मन्त्र में प्रभु आदेश दे रहे हैं कि हे मनुष्यो ! तुम्हारे परस्पर के प्रभावशील व्यवहार समान अभिप्राय से पुनीत हों। तुम्हारे हृदयगत भाव एक दूसरे से विपरीत न हों। तुम्हारी निर्णायक विचारधारा एक दूसरे से भिन्न न हो ।।

वस्तुतः वैदिक विचार धारा में जहाँ प्रजातन्त्र का सम्मान है वहाँ उस में एक अनुभवी विचारशील वस्तु स्थिति को देखकर तत्काल समस्या समाधान करने की क्षमता सम्पन्न व्यक्ति विशेष का वैशिष्ट्य भी है। किन्तु यहाँ का विषय प्रजातन्त्र का महत्व है जो कि अपनी सुरुचि से पूर्ण अभिन्न है।

विश्व के बड़े-बड़े राजनीतिज्ञों का इस सम्बन्ध में एक ही मत रहा है कि जितने भी शासन सूत्र को चलाने वाले वाद, सिद्धान्त नियम या तन्त्र हैं उनमें प्रजातन्त्र ही सर्वश्रेष्ठ है। इसमें प्रमाण की कोई आवश्यकता नहीं है। आप कहेंगे या पूछेंगे कि तब यह बताओ विभिन्न देशों में, विभिन्न समयों में प्रजातन्त्र के महित मन्त्र का माहात्म्य मन्दीभूत होकर एकतन्त्रवाद, अधिनायकवाद, अथवा तानाशाही को जन्म देने का निमित्त क्यों बनता

रहा ? इसके प्रत्युत्तर में एक ही निवेदन है कि—

'पुराणमित्येव न साधुसर्वं, न चाप्यवद्यं यदितन्नवीनम्" । संसार की कोई भी वस्तु पूर्ण रुप से निर्दोष नहीं और कोई भी पूर्ण रुप से सदोष नहीं। क्योंकि- "अतिशय रगड़ करे जो कोई, अनल प्रकट चन्दन से होई" यदि अमृत का दुरुपयोग विनाशक है तो विष का सदुपयोग जीवनप्रद भी है। यह एक सिद्धान्त है कि प्रत्येक वस्तु का ठीक ठीक उपयोग ही सिद्धिप्रद होता है और दुरुपयोग असिद्धि देने वाला। अतः जहां-जहां भी प्रजातन्त्र का प्रभाव क्षीण होकर रुपान्तर की प्रवृत्ति का पोषक हुआ है वहाँ निस्सन्देह उसका दुरुपयोग किया गया है। प्रजातन्त्र से पूर्व प्रजा का शिक्षित होना, तितिक्षु होना, विचक्षण होना, कार्य सक्षम होना, शासन योग्यता में दक्ष होना,पक्ष प्रतिपक्ष के क्षितिज पर अपनी दृढता से अक्षत होना, शिष्ट जनों के रक्षण में, दुष्ट जनों के तक्षण में और भ्रष्ट जनों की दुर्वृत्ति के भक्षण में उसे उत्कृष्ट होना अनिवार्य है। उसमें अपने नेता में अनुरक्ति, राष्ट्रगत भावों में भक्ति और अपनी भुजाओं में शक्ति होना अपरिहार्य है। समय आने पर प्राणों का भी उत्सर्ग उसका जन्मजातनिसर्ग होना चाहिये। स्वदेश के लिये स्वार्थ निवृत्ति का लक्ष्य जीवन निर्वाह की प्रवृत्ति से ऊपर होना ही आवश्यक है। अनुशासन में रहने का स्वभाव ही शासक बनने के प्रभाव का जनक माना जाना धर्म है। राष्ट्र की सम्पत्ति प्रजापर पडने वाली विपत्ति की महौषधि है ऐसी मान्यता जब तक प्रजातन्त्र के शासन यन्त्र की मूल मन्त्र नहीं बनती तब तक गाड़ी

अगाड़ी जा सकेगी यह एक मृग मरीचिका नहीं है तो और क्या है ? क्योंकि—

जिसको न निज गौरव तथा निज देश का अभिमान है,
वह नर नहीं पशु निरा है और मृतक समान है ॥

कौन नहीं जानता कि हम जिस यान के द्वारा अपने गन्तव्य मार्ग में प्रयाण करना चाहते हैं उसके परिष्कृत सुदृढ और अचूक होने का ध्यान ही उसके प्रति सम्मान का जनक है। जितने भी दोष प्रजातन्त्र में जन्म लेते हैं उनका मूल हेतु प्रजा की अज्ञता, प्रजा की अयोग्यता और प्रजा की अनभिज्ञता में ही उपलब्ध होता है। निर्दिष्ट गुणग्राम का गौरव प्रजातन्त्र होने के पश्चात् भी प्रयत्न पूर्वक उत्पन्न किया जा सकता है। भारत में यदि इस ओर स्वाधी-नता की उपलब्धि के अनन्तर ही प्रजाशिक्षण के शिक्षणालय स्थापित किये जाते तो आज हम जिस विचार चर्चा की रूचि में चिन्तित हो रहे हैं इसका अवसर ही न आता। प्रजातन्त्र एक ऐसा पवित्र तन्त्र है जिसके अनुयायी अपनी इच्छा के अनुसार राजतन्त्र का निर्माण कर सकते हैं। जब भी चाहें अपनी सरकार का परि-वर्तन करने में सफल हो सकते हैं। प्रजातन्त्र में एक प्रकार से प्रजा स्वतन्त्र ही होती है। वह इच्छा के अनुकूल अपने सुखसाधनों को समृद्धि, अपनी अध्यात्म साधना की शुद्ध सिद्धि और अपने अभूत-पूर्व भव्यवैभवों को वृद्धि संकलपमात्र के बल से ही पूर्ण कर सकती है। प्रजातन्त्र में प्रत्येक वर्ग, प्रत्येक समुदाय, प्रत्येक सम्प्रदाय और प्रत्येक पन्थ समान स्तर पर परस्पर सहयोग का संबल लेकर अग्रसर हो सकता है। विचार स्वातन्त्र्य का उपयोग और उपभोग

निस्सङ्कोच होकर किया जा सकता है। अपना मत देने वाला प्रत्येक व्यक्ति मतग्रहीता का एक प्रकार से पोषक ही होता है। अतः वह उससे अपनी सुखसुविधाओं के लिये हृदय खोलकर आग्रह कर सकता है, विग्रह कर सकता है और कर सकता है उसका निग्रह भी। प्रजातन्त्र में कभी भी किसी शत्रु के द्वारा सङ्कट उत्पन्न कर देने पर सब की सहानुभूति और सबकी दुःखानुभूति साथ ही होती है। राष्ट्र के अभ्युदय में कष्ट परम्परा सहन की प्रवृत्ति प्रत्येक में समानरुप से जागृत होने लगती है प्रत्येक व्यक्ति यही अनुभव करता है कि राष्ट्र उसका है और वह राष्ट्र का है। अकेला व्यक्ति शक्ति सम्पन्न होकर दूसरों को विपन्न करने में कभी व्युत्पन्न नहीं हो पाता। अनेकों उद्भट प्रखर योग्यतम व्यक्तियों के सुलझे और परिमार्जित विचार कार्य सिद्धि के लिये सर्वदा प्रस्तुत रहते हैं। संस्कृति, सभ्यता, आदर्श, गौरव और कला की अकल्पनीय उन्नति, परस्पर की स्पर्धा से प्रवृद्ध होकर समृद्ध होने लगती है। नेतृत्व का उत्तरदायित्व शनैः-शनैः विस्तृत होकर उच्चकोटि के महत्व का भागी बनने लगता है। अपने दोष और गुणों के मनन और चिन्तन का विचार उच्च भावना की भूमि को जन्म देने लगता है। जैसे-जैसे प्रजातन्त्र वृद्ध होता जाता है उसमें अनुभव, योग्यता, समृद्धि, समुन्नति, सुनीति, सुरीति, सद्भावना, उद्भावना आदि गुणों की वृद्धि ही होती जाती है। आज भी हम इस युग में 'अमेरिका, ब्रिटेन, स्वीडन, फिनलेण्ड, फ्राँस, स्विट्जरलेण्ड आदि देशों में उक्त गुण देख सकते है। इससे बिपरोत कुछ विचारों का विश्वास नवोदित राष्ट्रों के लिये अधिनायकवाद की श्रेयस्करता में ही बद्धमूल

है । उनकी विचारधारा में प्रजातन्त्र सर्वथा अनुपयुक्त है, वे समझते हैं कि प्रजातन्त्र एक प्रकार से शासन तन्त्र से अनभिज्ञ व्यक्तियों के समुदाय का मनमाना हास्यास्पद शासन है । इसीलिये उसमें विकृति जितनी शीघ्रता से अपनी प्रकृति बना लेती है उतनी उनकी आकृति में सौम्य शोभा का आविर्भाव नहीं हो पाता । सौ मूर्ख मिल कर अपनी सम्मति से छोटे को बडा और बड़े को छोटा, उचित को अनुचित और अनुचित को समुचित, अत्यन्त उपादेय को अनुपादेय और अनुपादेय को उपादेय क्षणभर में बना सकते हैं। भेड़ाचाल के समान एक व्यक्ति के द्वारा स्वल्प भी अकल्पनीय प्रवृत्ति की ओर अग्रसर होते ही दूसरे भी आँख मींचकर उसका अनुसरण और अनुकरण करने लगते हैं । अज्ञता के कारण स्वाभाविक स्वार्थान्धता होने से अन्ध-विश्वास की दृढता उन्हें विविध वर्गों में और अप्रवीण पार्टियों में ढकेल देती है । जिसका कि दारुण परिणाम उनके असाधारण और अकारण दोष धारण के धरातल पर रणभूमि बनकर उतर पड़ता है । परस्पर की आपाधापी मात्स्यन्याय से निर्बलों पर अन्याय करने के लिये कटिबद्ध हो जाती है । उत्कोच निस्संकोच होकर सहृदयों को भी आकुञ्चित कर लेता है । कर्तव्य हीनता, अकर्मण्यता, प्रमाद, शैथिल्य आदि दोष बिना थके प्रतिक्षण प्रत्येक के पीछे पड़ जाते हैं । भ्रष्टाचार, अनाचार और दुराचार अपना कुप्रचार करने के लिये स्वच्छन्द होकर नग्न नृत्य करने लगते हैं । राष्ट्र के स्वास्थ्य के साथ खिलवाड़ आरम्भ हो जाती है । दुश्शासन अनु-शासन के परिहास पर उतर पडता है । किंकर्तव्यमूढता बडे बड़े गूढ नीतिज्ञों को भी कूढमति बनाने में जुटजाती है । राष्ट्रभक्ति अपनी सामुदायिक शक्ति से भी हाथ धो बैठती है । सर्वत्र अराज-कता का साम्राज्य अपनी उर्जस्विनीविज्ञता पर मुस्कराने लगता

है । बस इन्हीं क्षणों में न चाहते हुए भी अधिनायकवाद अपनी विजय का शंख फूंक देता है। ऐसे विचारक सचमुच अपनी विचार धारा की विजय पर फूले न समाते होंगे। परन्तु क्या मैं उनसे इतना पूछ सकता हूँ कि यदि प्रजातन्त्र के मूल में आरम्भ से ही शिक्षा की समुन्नति की दीक्षा का और एक दूसरों को बढने देने की प्रतीक्षा का अमृत सींच दिया जाये तो क्या आपको मनों-कामनाएं पूर्ण हो सकती है ? क्या आपको पूर्ण विश्वास है कि अधिनायकवाद में एक व्यक्ति की भूल पर समस्त राष्ट्र को दण्डित नहीं होना पड़ता ?? क्या आप हृदय पर हाथ रखकर स्वीकार कर सकते हैं कि अधिनायकवाद प्रजा को सशक्त समुन्नत और सङ्गठित देखना फूटी आँखों से भी चाहेगा ?? क्या वह प्रत्येक को विचार स्वातन्त्र्य देना एकतन्त्रवाद के लिये शुभशकुन मान सकेगा ?? क्या उसमें इतनी उदारता सम्भव है कि उससे भी सौ गुणा योग्य कोई उसी का भाई ऊसके स्थान पर आकर उसका शासन सूत्र अपने हाथो में लेकर उससे भी अधिक तत्परता के साथ संभाल ले ?? किसी भी अधिनायकवादी के भीषण अत्याचारों से त्रस्त होकर क्या प्रजा स्वतन्त्रता के साथ बिना रक्तपात किये कभी भी उस तन्त्र का परिवर्तन कर सकती है ?? प्रजा के शोषण का एक बार भी चसका लग जाने पर क्या कोई अधिनायकवादी अपने बलिदान का उज्वल दृष्टान्त कभी भी किसी युग में इतिहास के पन्नों पर दे पाया है ?? क्या वह भी स्वतन्त्रता है जो अधिनायकवाद की चक्की के नीचे अपनी विवशता काआटा जीवन भर पीसती रहे ?? क्या वह भी स्वाधीनता गिनी जायेगी कि एकतन्त्रवादी के अनुचित भी आदेश पालन का कोड़ा खाकर प्रजा कराह भी न पाये ?? क्या यह दृश्य उस किसी शायर की शायरी की याद भी न दिलायेगा कि: -

हम आह भी करते हैं तो होजाते हैं बदनाम।
वे कत्ल भी करते हैं तो चर्चा नहीं होती ??

क्या आपको तिब्बत की रोती बिलखती पहडियाँ, पूर्वी पाकिस्तान के करोड़ों जवानों की चीत्कृतियाँ, दास प्रथायुग के बिलखते चीखते गुलामों के करुणक्रन्दन अभी तक भी कानों में सुनाई नहीं पड़ सके ?? क्या आपकी यह इच्छा है कि जर्मनी का हिटलर भारत की भूमि पर उतर कर फिर यहूदियों के छटपटाते, तिलमिलाते और बिलबिलाते उस दृश्य को उपस्थित कर दे ?? क्या आपको अच्छा लगेगा कि इटली का मुसोलिनी और रुस का स्टालिन एक बार फिर अवतार लेकर निर्दोष, निरपराध, दीन हीन निस्सहायों को जीवित ही भूमि में गड़वाकर निर्दयतापूर्वक सड़बादे ?? क्या फ्रांस के उस इतिहास की आप पुनः पुनरावृत्ति चाहते हैं जब धनिक अपने मनोविनोद मात्र के लिये किसी असहाय, निर्बल, दरिद्र को घोडे की टाँगो में बंधवाकर द्रुतगति के साथ उसे घिसटवा-घिसटवाकर आनन्द लिया करते थे ?? क्या आपको फिर उस दृश्य को देखने की सूझी है जब यवन मत स्वीकर न करने पर मालावार में सहस्रों और लाखों हिन्दुओं की गर्दनें धड़ से उड़ाकर कुए के कुए भर दिये गये थे ?? और क्या फिर आपका विचार ऐतिहासिक उस घटना के सुनने के लिये लालायित है जब ईसाई मत स्वीकार न करने पर पादरी कठोरता के साथ योरोप में कई कई सहस्र व्यक्तियों को पक्तियों में खड़ा करवा कर तलवार के घाट उतरवा दिया करते थे ?? कोड़ों से खाल उधड़वा देते थे और कड़कड़ाते तैल के कढाओं में डलवा देते थे ?? क्या इस अन्ध-विश्वास को आप पुनः जागृत करना चाहेंगे कि पृथ्वी को गोल कह देने मात्र पर ही एक उच्च विचारक को बिना बिचारे अग्नि में झोंक दिया जाये ??? —★—

७- विज्ञान और नास्तिकता

ओ३म् परीत्य भूतानि परीत्य लोकान् परीत्य सर्वाः प्रदिशो दिशश्च ।
उपस्थाय प्रथमजामृतस्यात्मनात्मानमभि संविवेश ।

यह तो प्रत्येक व्यक्ति चाहे वह अज्ञ हो अथवा प्राज्ञ हो विशेष रुप से जानता है कि प्रत्येक वस्तु का ज्ञान ही प्रत्येक के अस्तित्व का प्रतीक है और उसका अज्ञान अर्थात् उस वस्तु का अपरिचय उसकी अनास्था या उसके अनास्तित्व का निमित्त है। हम साधारण से साधारण भी वस्तु को उस अवस्था में नहीं हृदयङ्गम कर पाते जब हम उसके स्वरूप को अपने ज्ञान के रुप में भी नहीं जान पाते । दूर न जाइये-देखिये जैसे माना कि मैं ही आपके सम्मुख उपस्थित हूँ मेरा और आपका सम्बन्ध पारस्परिक परिचय की पुनीत प्रवृत्ति से प्रबल तम होकर ही परस्परालाप को अपने अनुरूप करने में समर्थ होता है। यदि हम में कोई एक भी एक दूसरे की एकता को स्वीकार न करें तो सुनानें वाला और सुनने वाला अथवा पढ़ने वाला और पढ़ाने वाला या लिखने वाला और लिखाने वाला दोनो या तो मौन हो जायेगें या फिर किसी पागल खाने के अतिथि बन जायेंगे। इस प्रकार इस विचार विमर्श की सरलतम सरणि के अनुसरण में हमे यह बलात् मानना पड़ेगा कि जीवन में अज्ञान ही जगत् के जन्तु जात कों क्लेशातिशय की ओर ढकेल रहा है और विज्ञान ही उसे प्रत्येक क्षण और प्रत्येक कष्ट में करुणा वसणालय के करुणार्णव का अमृत पान करा रहा है। आप प्रश्न करेंगे कि फिर विज्ञान के रहस्य को हृदयङ्गम करने वाले सहृदय विद्वान् भी ईश्वर के अस्तित्त्व मे ऊँगली उठानें

का कठोर साहस क्यों करते है ? मैं नम्रता पूर्वक निवेदन करुंगा और मुझे स्वतन्त्रता के साथ बिना झिझक के बोलने का अधिकार मेरा रिजर्व (सुरक्षित) समझा जाये तो मैं एक प्रश्न भी करना चाहूँगा ? आप ही बताईये कि दूर से सूर्य की चमकती रश्मियों में चिलकती सीप जब चांदी की तरह चमचमाती है तब तेज से तेज भी आँखों वाले बाल की खाल निकालने वाले उसे सीप होते होते हुए भी चाँदी बताने की बाते क्यों करने लगते हैं ? और कुछ कुछ चाँदनी की रात में चलते समय दूर से किसी शुष्क तरु को भी देखकर समझदार से समझदार भी आदमी उसे छिपकर खड़ा हुआ आदमी क्यों समझने लगता है ? और उसी रात में रास्ते में पड़ी हुई रस्सी को सर्प क्यों मानने लगता है ? आप एक साथ कह उठेंगें कि यह तो भ्रान्ति है भ्रान्ति है। तो आप ही बताईये इस महान् ब्रह्मामाणु के कण-कण में समाया हुआ वह तत्त्व जब भौतिक जगत की जगमगाती ज्योति में उसके स्वरुप से किञ्चित् भी विरुप होकर निरुपित नहीं हो पाता तब आप सन्देह के झूले पर क्यों नही झूलेंगे ? विज्ञान से पहले जब मानव ने बिना किसी आश्रय के सूर्य को आकाश में प्रकाश करते हुए और मातरिश्वा अर्थात् समीर से सरण को शाखी समूह हिलाते हुए देखा तो अनायास उसके आस्य प्रदेश से निकल ही तो गया कि- यह पुरुष नही परमेश्वर है परन्तु ज्ञान और विज्ञान के पिपासु वैज्ञानिक पुरुष ने इसका अनुसन्धान आरम्भ कर दिया उसने आकाश और पाताल तक के कण-कण को छानकर निष्कर्ष निकाला कि यह सूर्य जो विना आश्रय के प्रकाश कर रहा है यह अकेला नहीं-यह एक आकर्षण शक्ति से बंधा हुआ है और उस आकर्षण से हमारी पृथ्वी

बंधी हुई है-और उस भले मानस ने भी आव देखा न ताव, तत्काल कह ही तो दिया कि इसमें परमेश्वर की कोई करामात नही यह तो कुदरत का अपना खेल है किन्तु दूसरे ही क्षण उसमे भी विचक्षण किसी वैज्ञानिक जनने भी जानने का प्रयत्न किया कि यह आकर्षण अपनी यथावश्यक यथा नियम की स्थिति में किसी की परिस्थिति संकेत कर रहा है तो उसके मुंह से वह वेद मन्त्र निकल पड़ा जिस का कि उल्लेख इस लेख के आरम्भ में किया गया है। मन्त्र कह रहा है कि वह तत्व जो विश्व के आकर्षण का केन्द्र बिन्दु है इस असीम ब्रह्माण्ड के परे समस्त दिशाओं और विदिशाओं से बाहर होकर व्याप्त हो रहा है वह इतना सूक्ष्म है। कि विश्व कोई भी आविष्कृत साधन उसका साक्षात्कार नहीं करा सकता वह तो विश्व के अन्तराल में ऐसा ओतप्रोत है कि उसे खोज निकालना ऐसा ही हैं जैसे दो एक सरीखे जलो को मिश्रित करने के पश्चात् उन्हें पृथक-पृथक् पहचानने का साहस करना।

आप कहेंगे ! तुम्हें क्या हो गया है ? क्या तुम्हें पता भी हैं कि इस युग ने बड़े परिश्रम के साथ बड़ी सूझ बूझ के सहारे तुम्हारे उस प्यारे परमेश्वर का तो कभी का कान पकड़ कर अपने तर्क वितर्कों के मजबूत रस्सों से जकड़ कर इस भूमण्डल के अपार भूभाग से बाहर निकाल दिया है। वह दिन लद गये जब तुम्हारे भगवान् जिसको चाहे अन्धा, लङ्गड़ा, भिखारी या दुखारी बनाकर जब चाहा नचा डालते थे। आज तो विज्ञान अन्धों को आंखें, बहरों को कान, लङ्गडों को टांगें, भिखारियों को उद्योग और दुखारियों को मनोरञ्जन के साधन देकर भगवान् की भोली अक्ल में दखल तक भी देने का बीड़ा उठा चुका है। अब बूढे होने का डर विज्ञान के

आर्डर से डर के मारे मुँह तक दिखाने में झेंपने लग गया है। मरने का भय भी भूतकाल का भूत मात्र ही रह कर कराहने वाला है। जीव के शाश्वत होने का विश्वास अब लम्बे-२ सांस लेने लगा है। अब तो विज्ञान मानव के इस जीवविषयक पुनर्जन्म के विज्ञान को अज्ञान कहने के लिये भी ताल ठोक कर मैदान में आ गया है। क्या देखते नहीं हो कि आज तो मानव की इच्छा मात्र से सात समुद्र पार भी होने वाली वस्तु पलक मारते ही आंखो के सामने नाचने लगती है। अरे विज्ञान ने तो जिसे तुम अचेतन छाया कहा करते थे उसे भी आज चलचित्रों की करामात में चलती-फिरती,· उठती बैठती, हँसती बोलती, मानव की समकक्ष काया बनाकर भगवान की माया को भीं अल्टीमेटम दे डाला है। अब तो ओटोमेटिक मशीने क्षण भर में इतना पेचीदा और जटिलकाम कर डालती हैं कि लाखों मनुष्यों के मस्तिष्क भी उसे सालों सम्पादन करते हुए भी पूर्ण न कर पाये। अरे! आपको पता नहीं कि तुम्हारे शयन या निवासकक्षों में अब सरवेन्ट पङ्खा नहीं चलाते तुम्हारे पिताजी या अफसर के पास मिलने का समाचार भी पहुँचाने की उन्हें कोई आवश्यकता नहीं रही-समुद्र पार या पर्वतों के उसपार के वृत्तान्त भी अब पत्रों द्वारा पहुँचाने का युग गया। अब तो विज्ञान ने बिना किसी आश्रय के वार्त्ता विनोदादि की बातों की तो कौन कहे उनके समस्त मूर्त दर्शन भी दूरी और व्यवधानों की बाधायें दूर करके उनकी आंखों में प्रतिबिम्बित कर दिये हैं। वह दिन चले गयें जब अकाल पड़ने पर हम भगवान् का प्रकोप पुकारा करते थे। अब तो जब चाहो बादलों को आदेश दो वह दौड़ कर जल बरसाने लगेंगे। जब चाहो प्रकाश से कहो कि हम

चाँदना चाहते हैं बस कान पकड़ते ही आपका समस्त निवास भवन जगमगा डालेगा। प्यास के लिये जल देवता से कहो कि हम जलाभिलाषी है बस मुंह छूते ही जल धारा बहनिकलेगी। बताओ ऐसे युग में परमेश्वर की सिद्धि की किसे फुरसत है, जितने समय में तुम एक शब्द का उच्चारण कर पाते हो उतने समय में तो आज संयन्त्र न जाने कितते ढेरों में सम्पदाओं के अम्बार के अम्बार प्रस्तुत कर देते हैं।

मैं इस जानकारी से मुंह नहीं मोड़ना चाहता परन्तु क्या मैं इतना पूछ सकता हूँ कि मानव ! जब तू भगवान् के समस्त कौशलों का इतना कुशल खिलाड़ी हो गया है तब तुझमे-ईर्ष्या, द्वेष, दम्भ, निर्दयता, उद्दण्डता उद्धता, कठोरता, लुण्ठन-भावना, प्रवञ्चन चातुर्य, चौर्य भाव, सङ्कुचित विचार, अकिञ्चन परता, धनसञ्चय की प्रवृत्ति, परोपकार कीनिवृत्ति, पारस्परिक व्यवहार में भीति दुष्टनीति और अपने ही स्वार्थ सिद्ध करने की कुरीतिका पाठ तुझे किसने पढ़ा दिया है ? अबतोतू सर्वतन्त्र स्वतन्त्र होकर नियन्त्रण का स्वयम्भू हो गया है ? क्या मुझे बतायेगा कि पिछले युद्ध मे वैज्ञानिक समस्त साधनों की ऋद्धि सिद्धि लिये भी तेरे देखते- देखते ही लाखों इन्द्रपुरी के प्रसाद धराशायी क्यों हो हो गये थे ? असंख्यों तेरे साथी कराह कर तेरे मायावी प्रहारों से प्रहत हुए अंधे, लङ्गड़े लूले अङ्ग भङ्ग विकलाङ्ग होकर तुझे क्यों कोस रहे थे ? हीरो शाभा नागा साकी के निर्दोष निरीह सहस्रों नही लक्षों की संख्याये तेरी विख्याति का व्याख्यान करते-करते ही

किसे आंखे मीच-मीच कर सदा के लिये किन्हें रुला गये है ? आज मानव का मूल्य तेरे बनायें जड़यन्त्रों से भी कम होकर कैसे गिर गया है ? मानव दानव बनने के लिये क्यों तड़फ उठा है ?

विज्ञान के अन्ध भक्त मानव ! क्या मैं इतना पूछ सकता हूँ कि जब जीव का शाश्वत होना खण्डित हो चुका है तब इतनी लूट मार किसके लिये हो रही है ? वैभव विलास की इतनी अन्ध भक्ति क्यों की जा रही है ? यदि जीवन ज्योति का दीप तेरे हाथ आ गया है तो तू किकर्त्तव्यमूढ़ता के गहरे अँधेरे में क्यों भटक रहा है ? जीवन के समस्त साधनो की आराधना जब सफल हो चुकी है ? फिर ये असन्तोष की सृष्टि किस के लिये बसती जा रही है ? परमेश्वर का कान पकड़कर जब तू निकाल चुका है ? फिर तेरा परम ऐश्वर्य तेरी अनिच्छा से भी क्यों छिना जा रहा है ? क्या तुझे पता नहीं कि :"वाताभ्र विभ्रमिदं वसुधाधिपत्यमापात मात्र मधुरो विषयोपभोगः। प्राणास्तृणाजल विन्दु समानराणां धर्मः सखापरमहो परलोक मार्गे ।।

यह वसुधा का आधिपत्य वायु के बवण्डर से उड़ाये गये मेघाडम्बर के समान है ये सांसारिक विषय भोग दूर से सुन्दर दीखते अद्रि समुच्चय की तरह ही भले दीखते है। और ये प्रिय प्राण भी तृणाग्र स्थित जल बिन्दुवत् ही क्षण भर के मेहमान है तब तू ये अभिमान की बढ़बढ़ कर बाते कैसे मार रहा है ?

यदि इतने पर भी तुझे सन्तोष नही तो क्या मैं इतना पूछ

लूं कि परमेश्वर की सत्ता के अभाव में पृथ्वी की दसगतियाँ त्रिभिन्न परिस्थितियों में भी नियमित व्यापार करती हुई किस विज्ञान से आश्रित है ? एक लाख छियासी हजार मील की गति से प्रतिक्षण दौडने वाला प्रकाश अरबों वर्षों से ऊपर की निहारिकाओं से हमारी पृथ्वी का स्पर्श करता हुआ भीषण वेग के साथ सूर्य की परिक्रमा करता है यह हमारी धरा धड़ाम से ध्वस्त क्यों नही हो जाती ? प्रतिक्षण होने वाले उल्का पातों से सूर्य के चारो ओर चक्कर लगाने वाले खण्डित ग्रह आज भी शेष रहने का पूर्ण प्रमाण कहां से दे रहे है ! इन कोटानुकोटि ग्रहो की परिक्रमाये असंख्यात भास्करोंकी प्रभाये, असीम उपग्रहो के पृष्ठानुगमन किसके प्रबन्ध सम्बन्धकी ओर सङ्केत कर रहे हैं ?

हे मानव ! इस आश्चर्य कारक दृश्य को देखकर तेरा ही विज्ञान वेद मन्त्रों की ध्वनि मे गूंज ही तो उठता है—

एतावानस्य महिमा तो ज्यायाँश्च पूरुष पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि ।

उस प्रभु की माया का पार नही, यदि उस ब्रह्माण्ड भाण्ड के अधिपति के वैभव का चार भागों मे विभाजन किया जाये तो ब्रह्माण्ड जो कि इतना महान है जिसका पार लाखों मीलों की दूरी

क्षण मात्र में पार करने वाला प्रकाश आज तक भी हमारे पास नही आ सका वह भी केवल एक भाग मात्र है तीन भाग तो उसी के अन्दर समाये हुए है ?

न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्र तारकम् ।
नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्नि ।।

वहाँ तो सूर्य की भी गति नहीं चाँद तारे और बिजली की भी बिसात नही फिर गरीब अग्नि देव की असामर्थ्यं का तो कहना ही क्या ?

८- अंग्रेजी- अक्षम

ओ३म् इडासरस्वती मही तिस्त्रोदेवीर्मयो भुवः ।
बर्हिः सीदन्त्वस्त्रिधः ॥

यह मन्त्र बता रहा है कि हे मनुष्यो ! अपनी सभ्यता, संस्कृति, और मातृ भूमि की मान मर्यादा तथा उसकी रक्षा करने से ही समुन्नति के शिखर पर चढने का सौभाग्य मिल सकता है। हमें देखना है कि हमारी इन उपर्युक्त तीनों मांगों की पूर्ति की क्षमता किस में है ? जो विद्वान् अंग्रेजी को राष्ट्रभाषा के उच्चासन पर आसीन कराना चाहते है, क्षमा करें, वे विद्वान् नहीं है जिन्होंने अपनी भाषा के वैभव पर कभी ध्यान नहीं दिया। हमारी स्थिति उस कस्तूरीमृग जैसी हो रही है, जिसकी नाभि में कस्तूरी है किन्तु चारों ओर फैली सुगन्धि को सूंघ- सूंघ कर वह चारों ओर उसे लेने के लिये दौड़ता है, किन्तु उसे कहीं भी न पाकर दौड़कर और थक कर बैठ जाता है। अंग्रेजी के इतिहास ने अपनी आयु अभी तक दो सौ या ढाई सौ वर्षों से अधिक प्राप्त नहीं की है इसलिये उस में तत्व उपलब्ध नहीं हो पाते जो एक अध्यात्म विद्या के संरक्षक राष्ट्र को मिलने चाहिऐ। हमारे देश की संस्कृति का मस्तिष्क सर्वदा स्वदेशीय ऋषि मुनियों की उन परम्पराओं आदर्शों और गौरवों से सम्बन्धित रहा है जिन्होंने विश्व के कोने-कोने को जीवन की वास्तविक शान्ति से अनुस्पूत किया है। विश्व के चुने हुए विचारकों के विचारों से प्रतीत होता है कि वे भारतीय

संस्कृति के प्रशान्त महासागर में जिन अमूल्य रत्नों को खोज पाये हैं वे संसार की किसी भी संस्कृति में नहीं मिल पाये।

राष्ट्र भाषा के प्रश्न पर हमें गम्भीरता से सोचना चाहिये, क्योंकि हमारी युगों की अमूल्य निधियों का स्रोत केवल भारत में ही नहीं प्रवाहित होना है उसे तो हमें विश्व के समस्त ज्ञान पिपासु मानसों तक प्रवाहित करना है। इसका आधार हमें राष्ट्र भाषा को चुनकर बनाना है। वर्तमान समय में भारत की जन-संख्या ६४ करोड़ के आसपास है। हम में बड़ी कठिनाई से ५ प्रतिशत ऐसे व्यक्ति मिलेंगे जो अंग्रेजी जानते हुये भी अपनी समस्त भाव भङ्गियों को व्यक्त कर सकें। ९५ प्रतिशत व्यक्ति ऐसे हैं जो अंग्रेजी नहीं समझते। उनमें कुछ लोग प्रान्तीय भाषाओं के अभिज्ञ हैं और शेष सब हिन्दी भाषा के भाषो है। प्रान्तीय भाषाओं से अभिज्ञ व्यक्ति भी हिन्दी समझने में पर्याप्त शक्ति रखते हैं। ऐसी स्थिति में अंग्रेजी भाषा को राष्ट्र भाषा बनानें में जहाँ बड़ी कठि-नाइयाँ आयेंगीं वहाँ साथ ही बहुव्यय साध्य भी यह प्रयोग रहेगा। अंग्रेजी भाषा में वैज्ञानिकता न होने के कारण हम अपने सब प्रकार के उच्चारणों के प्रकार शिक्षण से वञ्चित रहेंगे उदाहरण के रूप में– हम ताता गृह को टाटागृह, दादा जी को डाडा जी आदि कहने लगेंगे। हम अपने वेद मन्त्रों को इस भाषा के माध्यम से लिख ही न पायेंगे। हमारे प्राचीन पूर्वजो के इतिहास का स्थान जैसा कि आजकल के पाश्चात्य पूर्वज लेते जा रहे हैं और तेज़ी से लेने लगेंगे। हम बहुत शीघ्र ही भारतीय संस्कृति और सभ्यता से अनभिज्ञ होकर आज के अंग्रेजी विद्धानों के समान पाश्चात्य

संस्कृति और सभ्यता के गुणगान करने वाले बिना वेतन के भाट बन जायेंगे। आज हम देखते हैं कि रूस में रुसी संस्कृति है, चीन में चीनी सभ्यता है, अमेरिका में अमेरिकन शिक्षा है किन्तु भारत-वासियों का मस्तिष्क आज विदेशी संस्कृति और सभ्यता के लिये तड़फ रहा है। विदेशों के मनस्वी हमारी इस मानसिक स्थिति को देखकर मन ही मन मुस्करा रहे हैं और सोच रहे हैं कि यह देश वास्तव में अभी स्वतन्त्र नहीं हुआ है। चीन तो खुल्लम- खुल्ला प्रचार कर रहा है कि भारत साम्राज्यवादियों का पिट्ठू है। वह काँग्रेस के समाजवाद पर भी कुल्हाडा चला रहा है और संस्कृति के प्रश्न को लेकर तो वह आकाश पाताल एक किये दे रहा है। चीन की दृष्टि में चीन की ही संस्कृति विश्व में फैलनी चाहिए, इसके लिये वह रुस से भी दो-दो हाथ करने को तैयार है। स्वाधीनता प्राप्त करते ही हालैण्ड ने रात्रि के १२ बजे ही घोषणा की कि हमारी राष्ट्रभाषा हालैण्ड की ही रहेगी, भले ही उसमें कार्यनिर्वाह की पूर्ण क्षमता हो या न हो। इसी प्रकार सभी स्व-तन्त्रता के प्रेमी राष्ट्रों ने अपने देश की भाषाओं को राष्ट्रभाषा घोषित किया है। प्राय: कुछ विद्वान् कहते हैं कि हिन्दी में वैज्ञा-निक शब्दों की कमी है किन्तु यह ठीक नहीं क्योंकि हिन्दी की संस्कृत भाषा जननी है अतः उसके व्याकरण से हम समस्त शब्दों के निर्माण की पूर्ति कर सकते हैं। जैसा कि डा. श्री रघुबीर ने करके भी दिखाया है। हिन्दी भाषा के राष्ट्र भाषा बनने में किसी भी प्रकार की अड़चन नहीं आ सकती। हिन्दी भाषा के राष्ट्र भाषा न होने से जो अड़चने सामने आई है उनपर विचार करना प्रत्येक विचारक का परम कर्तव्य है। पीछे चीन की लड़ाई में बहुत

से सैनिक जिनमें गोरखा पल्टन भी थी, अंग्रेजी के माध्यम से युद्ध के सञ्चालन की पूरी जानकारी न प्राप्त कर सकने के कारण शत्रु के धोखे में आकर उनके पञ्जे में फंस गये थे। डाक्टर लोग जिन आहतों का उपचार करते थे अंग्रेजी माध्यम होने के कारण उनके उपचारकों को स्पष्ट निर्देश न दे पाये जिससे कि बड़ी कठिनाई का सामना करना पड़ा। आज भी जितने आवश्यक निर्देश केन्द्र से प्रसारित होते हैं उनमें अंग्रेजी का बोलबाला होने के कारण सामान्य जनता उनकी जानकारी से लगातार वञ्चित रहती है। कलकत्ते आदि शहरों में बिचारे निम्नस्तर के व्यक्ति जो अंग्रेजी नहीं जानते और दूसरों से अपना काम अंग्रेजी में नहीं करा पाते वे अपने घरबार के सुखदुःख और जीवन मरण की आवश्यक बातें शीघ्र इसलिये नहीं जान पाते कि उनका हिन्दी में पता लिखा हुआ पत्र उनके घर नहीं पहुँच पाता क्योंकि कलकत्ते के डाक बाबू हिन्दी पढना नहीं जानते। इसी प्रकार की और भी सैकड़ों घटनाएं और दृष्टान्त दिये जा सकते हैं। समस्त राष्ट्र को एक सूत्र में बांधने के लिये एक ऐसी भाषा की आवश्यकता है जिस में कठिनाइयाँ न हों। ऐसी भाषा हिन्दी भाषा ही हो सकती है। हिन्दी के राष्ट्र भाषा में होने से जो लाभ होंगे उनमें कुछ पर चर्चा करना सामयिक कर्तव्य है। हमारा सबसे पहले यह कर्तव्य होगा कि गुणदोषों की चर्चा होने के पश्चात् अपने बिचारों में उदारता लायें। राष्ट्र भाषा हिन्दी होने पर सबसे पहले समस्त देशवासी विश्व की उन गातिविधियों को जिन्हें हम अंग्रेजी के माध्यम से तत्काल नहीं सुन पाते थे उनसे वञ्चित नहीं रहेंगे। आज जो ज्यादती अंग्रेजी न जानने वालों पर हो रही है वह बन्द हो

जायेगी ।प्राचीन भाषाओं में संस्कृत जानने वालोंका सम्मान बढ जायगा वे निश्चिन्त होकर संस्कृत के रहस्यों को जनता के सम्मुख प्रस्तुत करने में समर्थं हो जायेंगे। प्रान्तीय भाषाओं के विद्धानों तथा उसके व्यवहार करने बालों को भी प्रोत्साहन मिलने लगेगा क्योंकि हिन्दी का सम्बन्ध किसी न किसी रुप में प्रत्येक प्रान्तीय भाषा के साथ है। ग्राम पञ्चायतों को अंग्रेजी न जानने के कारण जो कष्ट उठाने पड़ते हैं वे समाप्त हो जयेंगे। साधारण बुद्धि के बच्चों को तीन-तीन भाषाओं को पढने की चिन्ता से मुक्ति मिल जायगी और वे मातृभाषा के माध्यम से थोड़े ही समय में एक बड़े ज्ञान का अर्जन सरलता से ही कर सकने में समर्थ हो जायेंगे। अंग्रेजी भाषा की कठिनाई से जो छात्र परीक्षाओं में अनुत्तीर्ण होते हैं और निराश होकर आत्महत्याओं तक के लिये अपने को समर्पित कर देते हैं उनकी बहुत अंशो में रक्षा होने लगेगी । जो बढियावेतन आज अंग्रेजी शिक्षा के निमित्त दिया जा रहा है वह स्वदेशी भाषा के उन्नायक विद्धानों की समुन्नति में सफल होने लगेगा। इस प्रकार सैंकड़ों लाभ हमें तत्काल मिलने आरम्भ हो जायेंगे।

आज हिन्दी भाषा का चीरहरण हो रहा है। अंग्रेजी के सार्वभौम साम्राज्य का पक्षपाती इन जिन लोगों का वर्ग दुर्योधन के समान- 'सूच्यग्रं नैव दास्यामि बिना युद्धेन केशव!" का नारा लगाकर भारतीय सस्कृति को मिटाने पर तुल गया है। भाषा द्रौपदी के पञ्चनिर्णायक पता नही कौन सी प्रतिज्ञा में बद्ध है।

कि पाण्डवों को तो १४ वर्ष का ही वनवास हुआ था किन्तु भाषा द्रौपदी के निर्णायक पञ्चों को १५ से भी अधिक का वनवास भोगना पड गया है। उनका तो निर्णय भी हो गया था किन्तु इनका निर्णय ही नही होने में आ रहा। आज अंग्रेजी पद्धति के कारण गुरुशिष्य भावको सन्निपात हो गया है। मातृ–पितृ सम्बन्ध लड़खड़ा रहे हैं। पति- पत्नी का आदर्श वर्तमान कालीन बह रहे प्रवाह में गोते खा रहा है। भ्रातृभगिनियों की गौरव पूर्ण पद्धति आज की शिक्षा नटी से पददलित की जा रही है। लाखों वर्षों से चली आ रही अक्षुण्ण भारतीयता योरोपीय अनुकृति के कटाक्ष विक्षेप से क्षत विक्षत हुयी जा रही है। आज चारों ओर दृष्टि पात करने से ऐसा प्रतीत हो रहा है जैसे भारत यारप बनने की तैयारी में तिलमिला रहा हो ॥

मैं जानना चाहाता हूं कि आज हम क्या चाह रहे हैं? क्या हम यह चाह रहे हैं कि इंगलेण्ड का "प्रीफ्यूमोकीलर" काण्ड भारत की गलीं- गली में भी अपना उद्दण्ड ताण्डव आरम्भ करें? क्या लन्दन के शिक्षणालयों के समान भारत में भी विद्यालयों में विद्यार्थी अपनी लज्जा को भी तिलाञ्जलि देकर इन अपनी सम्मानीय बहिनों के लिये यौन सम्बन्धी प्रश्न किया करें ? क्या लव-मैरिज और तलाक का उत्तानतटवर्ती तीर्थ भारत में स्थापित करने का श्री गणेश होना चाहिए ? कहाँ तो हम यह कहा करते थे कि– "एतद्देश प्रसूतस्य, सकाशादग्र जन्मनः। स्वंस्वंचरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः" ॥

और कहाँ आज हमविदेशी भाषा और विदेशी सभ्यता के

अनियन्त्रित अतिथि बनने जा रहे हैं ? आज हमारे देश में इस लज्जा जनक विषय पर वाद विवाद प्रतियोगिताएं कराई जा रही है ? अंग्रेजी के पक्ष में बोलने वाले विद्वन्मस्तिष्कों से क्या यह पूछ लियाजाय कि जिस संस्कृति की प्रशंसा पर आज समस्त योरोप को अपने हार्दिक भावों के पुष्प चढाने के लिये बाध्य होना पड़ा है क्या वह पागलपन है ? जिस हिन्दी की शिक्षा के लिये आज रूस अपने देश में आपके भाषा माहात्म्य की आरती उतारने जा रहा है क्या वह भोंदूपन है ? आपके पास में ही अफगानिस्तान आपकी भाषाओं को अपने विश्वविद्यालयो में जो स्थान देने की उदारता पर अवतीर्ण हो रहा है क्या यह उसके लिये विरोध सभाओं का आयोजन है ? अमेरिका में आपकी प्रान्तीय भाषाओं तथा हिन्दी भाषा के गहन अध्ययन का जो आयोजन पल्लवित हो रहा है क्या आप उससे आहत हृदय हो गये हैं ? वस्तुतः

एक टीस दिल में उठती है, एक दर्द जिगर में होता है।
हम बैठके रात में रोते हैं, जब सारा आलम सोता है ।।
दिल के फफोले जल उठे, सीने के दाग से।
ईस घर को आग लग गई इसघर के चिराग से ।।

— १ —

भारतीय परम्परा में—

धर्मनिरपेक्ष नीति का अनौचित्य

यह तो आप जानते ही हैं कि संसार की संस्कृतियाँ, रीति
और नीतियाँ समय के चक्र के साथ ही घूमती हैं परन्तु अपनी
अध्यात्म संस्कृति के पितामहों, ऋषियों और मुनियों के विचा
अपनी अध्यात्म शक्ति के स्रोत के साथ ही उन्हें बहना पड़ता
ऐसे बने हुऐ हैं। जब युधिष्ठिर जी ने श्री भीष्म पितामह से पूछ
कि– "कालोवा–कारणं राज्ञो राजावा कालकारणम्" अर्थात् क
समय राजा का निर्माण करता है या राजा अपनी इच्छानुसा
समय को मोड़ने की शक्ति रखता है ? तब श्री भीष्म पिताम
बोले:- "इति ते संशयो माभूत् राजा कालस्य" कारणम् अर्था
आपको इस विषय में जरा भी सन्देह नहीं होना चाहिए। वास्त
में राजा के अन्दर ऐसी शक्तियाँ हैं कि वह समय के उल्टे प्रभा
को अपनी शक्ति से इच्छानुसार परिवर्तित कर सकता है। इ
सिद्धान्त के अनुसार अपने समयों में श्री राम, श्री कृष्ण, महात्
बुद्ध, स्वामी शङ्कर और महर्षि दयानन्द आदि ने समय के चक्र
बलात् परिवर्तित किया है। परन्तु दुःख है कि हमारी सरक
अन्य देशों की दशा का दर्पण देखकर अपना मुँह भी उन्हीं जै
बना रही है। यह देश धर्म प्रधान है। इस देश के कण-कण

धार्मिकता का गुण सन्निहित है। योगदर्शन कार कहते हैं कि– "यतोऽभ्युदय निः श्रेय स सिद्धिः स धर्मः" अर्थात् जिससे मानव मात्र या प्राणी मात्र का अभ्युदय हों और मुक्ति की प्राप्ति हो वह धर्म है तब बताइये अपने देश की उन्नति के जिन नियमों का पालन हमारी सरकार कर रही है क्या वे उक्त लक्षण के अनुसार धर्म के अन्तर्गत नहीं होते ? और यदि धर्म निरपेक्ष का अर्थ किसी भी धर्म में हस्तक्षेप न करना है तो फिर यह आपको अवश्य सोचना पड़ेगा कि हमारी सरकार ने यह नितान्त भूल नहीं की हुयी है कि अपनी देश की परम्परा के विरुद्ध दूसरे देशों की देखादेखी भ्रम पूर्ण आदर्श से रहित भी आदर्श के नाम पर एक ऐसा वाक्य घड़ डाला है जो हमारी सरकार की सूझ बूझ पर भी नासमझी का वज्र प्रहार कर रहा है। क्या सैकुलर स्टेट का ट्रांस्लेशन धर्म निरपेक्ष राज्य ठीक है ? यदि नहीं तो बताइये यह कितनी भारी भूल है मैं तो समझता हूँ नास्तिक जगत् को भ्रम में डालने के लिये अथवा अपने देश की परम्परा की चुटकी लेने के लिये या फिर प्रकृतिवादियों के हृदयों को गुदगुदाने के लिये यह एक शो ही समझना चाहिए। यदि धर्मनिरपेक्ष का अर्थ साम्प्रदायिकता के पक्षपात से ऊपर उठना है तब तो धर्म की पावन परम्परा पर साम्प्रदायिकता का थूक फेंकना कितनी बुद्धिमत्ता का काम है यह भी सोचकर देख लीजिये ।

और सच पूछिये तो सरकार की इसी नीति के कारण आज हमारे ही देश में रहने वाले और हमारे ही आश्रय में फूलने फलने वाले कुछ मुसलमान तो आज भी मुस्लिमलीग का संगठन करते हुए पाकिस्तान का छिपकर भारत में बीज बो रहे हैं और कुछ ने तो बलात् आपके उत्तर प्रदेश की असेम्बली में उर्दू की

अनिवार्य प्रयुक्त करने का बिल तक पास कर डाला है। इसी ही नीति के कारण चुपचाप भारत के अनेक टुकडों को पाकिस्तान बनाने के लिये आज अन्दर ही अन्दर एक षड्यन्त्र पनप रहा है। इसी कारण भारत की आर्थिक स्थिति की रीढ आज गोहत्या निषेध कानून बिचारा न जाने कहाँ पडा पडा सिसक रहा है। इसी कारण पंजाब के हिन्दी आन्दोलन की अग्नि में न जाने कितने निर्दोष शरीर झुलस गये। मास्टर तारा सिंह ने इसी कारण निर्लज्ज होकर भारत माता की पीठ में सिक्खवरस्तन की माँग का छुरा भोंका था। भारत की सीमाओं पर इसी कारण आज ईसाई पिछड़ी जातियों को सैंकड़ों नहीं सहस्रों नहीं लाखों की संख्या में ईसाई बनाकर एक पृथक् राज्य की मांग का सुनहरी स्वप्न लेते हुए विदेशी तत्वों का संगठन कर रहे हैं। पाकिस्तान के द्वारा प्रति दिन सीमा सम्बन्धी विवाद को लेकर जो निर्दोष निर्बल दीन हीनों की हत्या की गई एवं की जा रही है तथा उनकी स्त्रियों के साथ अपना मुँह काला करके करोड़ों भारतीयों के कोमल हृदय में ठेस पहुँचाई गयी एवं पहुंचाई जा रही है उसकी जड़ में इसी नीतिका विष घुल रहा है भारतीय गोरक्षक पुरुषार्थियों की अरबों रुपये की सम्पत्ति क्या पाकिस्तान में गोभक्षकों, स्वदेशद्रोहियों गुण्डों की विलासिता में इसी नीति के कारण अपवित्र नहीं की गई ? और ५३ करोड़ रुपया महात्मा गाँधी जी के द्वारा शान्त भारतीयों की छाती पर मूंग दलने के लिये इसी कारण पाकिस्तान को नही मिला है ? दक्षिण भारत में क्या बहुत से हिन्दुओं के नगर के नगर ईसाई मिशनरी के जाल में फंस कर हिन्दुत्व के संगठन में कटार भोंकने के लिये इसी कारण क्या नहीं तड़फ रहे रहे ?

बङ्गाल और काश्मीर में हिन्दुत्व की उपेक्षा क्या राष्ट्र की नीव खोखला करने के लिये इसी कारण पुष्ट नहीं हो रही ? जनसङ्घ के महान् नेता श्री श्यामा प्रसाद मुकर्जी काश्मीर में शेख अब्दुल्ला के द्वारा क्या इसी कारण विष देकर मृत्यु के घाट नहीं उतार दिये गये ? स्वाधीनता के समय बिहार, बङ्गाल, पञ्जाब आदि प्रान्तों में यवनों के द्वारा हिन्दू स्त्रियों के स्तन काटकर उन से अपना मुँह काला करके ऊपर से अवर्णनीय अमानुषिक अत्याचार करके क्या ४० करोड़ हिन्दुओं का कोमल हृदय टुकड़े -२ नहीं कर दिया गया ? आज स्वाधीनता को मिले ३२ वर्ष बीत जाने पर भी बिचारा शिक्षा का क्षेत्र इसलिये सिसक- सिसक कर तिलमिला रहा है कि वह आज सरकार की धर्मनिरपेक्षता के कारण असंख्यों सम्प्रदायों के हस्तपाशों में जकड़ा होने से प्रगति की दिशा में बढने के लिये अपने को विवश पा रहा है। आज भी शिक्षा में कोट-पैन्ट घडी चश्मे क्रीमपाउडर बूट लिपिस्टिक नेल्स कलर और शरीर को नङ्गा दिखाने वाली बारीक साड़ियों आदि का उपयोग एवं उद्दाम शृङ्गार की चेष्टाओं का कलापूर्ण अध्यापन इसीलिये अबाध गति से बढ रहा है कि सरकार देश को गहरे गर्त में डालने वाली इन स्वच्छन्द शिक्षा संस्थाओं को इसी धर्म निरपेक्षता के कारण कुछ भी कहने में जुए में हार हुए पाण्डवों की तरह अपने को नपुंसक पा रही है। आज अपनी संस्कृति के अपने ही देश में केवल इसी नीति के कारण युगों से अपने जीवन की बलि देते हुए अपनी अध्यात्म विद्या के रक्षक संस्कृत के धुरन्धर विद्वान् भी ७५ और सौ मासिक वृत्ति तक सीमित हैं और भारत की नैय्या

को मझधार में डुबाने वाली अंग्रेजी के पृष्ठपोषक विद्वान् चाहे फिर वह मेट्रिक ही पास क्यों न हों मासिक हजार रुपये तक भी पा रहे हैं। इसी कारणः-

अपूज्या यत्र पूज्यन्ते पूज्यानां च विमानना ।
त्रीणि तत्र प्रवर्धन्ते दुर्भिक्षं मरणं भयम् ॥

सो आज आप देख लीजिए देश में प्रति वर्ष दुर्भिक्ष अतिवृष्टि सूखा, अकाल मृत्युयें और पारस्परिक चोर डाकुओं तथा मुनाफा खोरों का भय बढ ही रहा है। इसी के पीछे छात्रों की अनुशासन हीनता फूल और फल रही है। इसी के पीछे अध्यापकों का अपमान गर्व से अपना सर उठाये इतरा रहा है। इसी के पीछे बिचारी अध्यात्म विद्या अपना सर नीचा किये अपने दिनों को रो रही है। इसी के पीछे देश भक्ति की शिक्षा शृङ्गार की तरल तरङ्गों में डूबी जा रही है। आज अंग्रेजी का मोह न छूटकर हिन्दी और संस्कृत का मोह छूट रहा है। शृङ्गार का मोह न छूटकर सादगी के दिन लदे जा रहे हैं बिचारे सत्य व्यवहार का गला घुट रहा है तो भ्रष्टाचार खिलखिलाकर हंस रहा है। ईमानदारी का पातिव्रत्य भङ्ग किया जा रहा है तो चोर बाजारी अपनी माँग में सिन्दूर डाल रही है। अहिंसा बिचारी का मुँह उतर गया है तो हिंसा इठला रही है। भारत के असंख्य नवयु वक और नवयुवतियों के पावन चरित्र की होली खेलने वाला चलचित्र सिनेमा व्यवसाय इसलिये नहीं रोका जा सकता कि अपनी सरकार धर्म निरपेक्ष है। भारत की स्वाधीनता के समय अपने देशवासियों का साथ छोड़कर

अंग्रेजों का साथ देने वाले कम्युनिस्टों की केरल, प. बंगाल आदि में चुनाव सम्बन्धी विजय को सरकार इसलिये नहीं रोक सकती कि वह धर्म निरपेक्ष जो ठहरी। भारत में उपद्रव मचाने वाले मुस्लिम लीगियों को सरकार पाकिस्तान इसलिये नहीं भेज सकती कि उसकी धर्म निरपेक्षता में बट्टा न लग जाये। तब तो शायद नौकरी न मिलने के कारण दर-दर भटकने वाले बेकारों की समस्या, धर्म के नाम पर मर मिटने वाले पाकिस्तान से निकाले गये अपना सर्वस्व लुटाकर भारत की शरण में आने वाले शरणार्थियों की समस्या भीषण महँगाई के कारण भरपेट भोजन न खा सकने वालों की अन्नसमस्या भी कहीं धर्म में हस्तक्षेप समझकर ही सरकार न सुलझा सक रही हो। आश्चर्य हैं — हमारी सरकार गोपालन की जगह मुर्गी पालने का आदेश दे सकती है। शुद्ध घी के उत्पादन के स्थान पर डालडा को प्रोत्साहन दे सकती है। प्रत्येक के लिये अत्यन्त सस्ती आयुर्वेदिक औषधियों के स्थान पर विदेश से आनेवाली करोड़ों रूपयों की बहुमूल्य डाक्टरी की दवाइयों को मँगाने का वरदान दे सकती है। तब बताइये भारत की आदर्श परम्परा किसका द्वारा खटखटाये ? प्राचीन सभ्यता किसके घर जाकर अपने जीने के लिये भिक्षा की याचना करे ? प्राचीन संस्कृति किसके सम्मुख जाकर अपने दिल के फफोले फोड़े ? स्वदेशभक्ति कौन से वर को ढूंढकर अपनी अनुरक्ति प्रगट करे ?

卐

१०- भावात्मक एकता

हिन्दी द्वारा ही सम्भव

मैं अपने देश के इस दिव्य प्रदेश में विदेश की भाषा को जब अपने हृदय की मूर्त आशा में चिन्तन मात्र के लिये भी स्थान देता हूँ तब ऐसा प्रतीत होता है जैसे अतीत के गौरव पर व्यतीत होने वाले महत्त्व को थोप रहा हूँ।

हिन्दी भाषा वह भगवती भवानी है जिसका सम्बन्ध जीवन के अभय दायक भगवान् भूत भावन के साथ है। वैदिक प्रभात का प्रभूत रश्मियाँ छन-२ कर अनादि काल से इस में भरती आ रही है। वैदिक संस्कृति की शोभा इसके वैभव की सम्भूति में न जाने कब से अभिमुख होकर इसका अभिनन्दन करती आ रही है। समस्त भारत की मातृ भाषा होकर भारतीय विभिन्न भाषाओं का लालन पालन करती हुई यही वह जननी है जो जन जनमानस के आकर्षण की जननी है, जो भारतीय गौरव, भारतीय आदर्श और भारतीय संस्कृति के रहस्यो की परम्परा की भी जननी है।

प्रान्तीय भाषाओ की लिपियाँ इसी के ललित लास्य से कलित होकर अपनी-अपनी भाव भङ्गियो मे पल्लवित हो रही हैं। इसी की शब्द राशि का अशीर्वाद उन्हें दीर्घायुष्य दे रहा है। संस्कृत भाषा की आशाओ का शृङ्गार भूत शृङ्गार इसी को विरासत के रुप में उपलब्ध हुआ है दश-दश मील की दूरी पर विदूरी

भूत भी भाषा का स्वरुप अपने मूल को यदि नहीं भूल रहा तो उसमे इसी का महत्त्व प्रतिबिम्बित मिलेगा। समस्त भारत के धार्मिक जन समुदाय में यदि आपको कर्म काण्ड की साधिका के के दर्शन चाहिये तो निस्सन्देह संस्कृत भाषा की स्निग्ध सुता इसी भाषा का अन्वेषण करना पड़ेगा। आज सर्वत्र ९९ प्रतिशत जनता अंग्रेजी के माध्यम से अपने प्रतिक्षण के व्यवहारों में उस समय भी असमर्थ है जब अंग्रेजी की तूती बोल रही है और अंग्रेजी को ही साम्राज्ञी बनाकर दिव्य देव नागरी को इसका दासी तक बनाया हुआ है,आज भी भारत के ७ लाख ग्राम अंग्रेजी के माध्यम से वञ्चित इसलिये है उसमे भारतीयता सञ्चित नहीं है उसमे सरलता और हिन्दी भाषा के साधारण शब्दो के उच्चारण की तरलता भी किञ्चित् नहीं है। वेद का मन्त्र अंग्रेजो में लिखकर शुद्ध- शुद्ध पढ़ना तो ऐसा हैं जैसे बालू के ढ़ेर से तैल निकालना। फिर भो हमारे देश के कोटिकोटि जनता के भाग्य विधाता इस देश की विभूतियों का परिहास कर रहे है कि हिन्दी भाषा को राजकीय कार्य निर्वाह मे अक्षम बता रहे है। सच तो यह है कि आज भारतीय एकता की सौम्य मूर्त्ति का चीर हरण किया जा रहा है, भारतीय भाषा के वैभव का अपहरण किया जा रहा है, भारतीय संस्कृति के शरीर को बलात्कार से दूषित किया जा रहा है। जब भारत में अंग्रेजी का पदार्पण नही हुआ था तब क्या इस देश का व्यवहार नही चलता था ? जिन देशों मे आज भी अंग्रेजी नहीं है क्या उन देशो के व्यवहार लङ्गड़े लूले होकर पलङ्गों पर पड़े पड़े सड़ रहे है ? यदि हिन्दी की उन्नति का अभाव हिन्दी के राज–

कीय व्यवहार मे बाधक है तो यह बताया जाये कि इस का पाप किसे भोगना चाहिये ? अंग्रेजी के प्रचारार्थ ५० करोड़ रुपया वार्षिक व्यय करने वाली सरकार हिन्दी प्रचार मे रत्ति भर भी सहायता न देने वाली यदि आज अपने कर्त्तव्य से च्युत होती है तो यह उसका अपराध अक्षम्य है "उलटा चोर कोतवाल को डाँटे" वाली कहावत चरितार्थ करने वाले आज जनता जनार्दन की आँखों में धूल झोंक रहे हैं।

अंग्रेजी भाषा के पक्षपातियों से क्या मैं इतना पूछ सकता हूँ कि राष्ट्र की भावात्मक एकता यदि अंग्रेजी भाषा के सौभाग्य से आबद्ध है तो इङ्गलेण्ड और आयर लैण्ड पृथक्-२ क्यों है ? ब्रिटेन और फ्रांस की क्यो नहीं बनती ? अमरीका उत्तरी और दक्षिणी आज तक भी क्यों एक राज्य का समन्वय नही कर पाये ? योरोप के छोटे-छोटे राष्ट्र अभी तक भी परस्पर क्यों फटे हुए है ? दूसरी ओर राज्य के संरक्षण से वञ्चित भी क्षीण काया देव नागरी प्रति· क्षण स्तर से दक्षिण की ओर पूर्व से पश्चिम की ओर इतनी द्रुतगति से दौड़ लगा रही है कि उसकी ओर न झाँकने वाले भी प्रतिपल अपनी पलके बिछा- २ कर उसकी प्रगति से विस्मित हो रहे हैं। हिन्दी की भावात्मक एकता के कारण ही मुस्लिम कवियों ने अपने धार्मिक तास्सुब को छोड़कर अपनी भाव भंगियों का आधार हिन्दी को बनाया। रुसियो ने अपने देश में हिन्दी का अध्यापन सुधा धयन के समान अपनाया। जावा सुमात्रा आदि में रामायण के माध्यम से हिन्दी का स्नेह भारतीय भावों की भूरि आराधना का धवल ध्यान ही माना जायेगा। अमेरिका में हिन्दी

के प्रति प्रेम को हिन्दी का पति प्रेम ही कहा जाना चाहिये। सुदूर देशों में हिन्दी के महत्त्व का अध्ययन हिन्दी के गौरव का विकसित अध्याय ही समझना पड़ेगा। आज भारत की प्रान्तीय भाषाओं में हिन्दी भाषा की मुस्कराहट सुस्पष्ट रुप से देखी जा सकती है। मराठी, गुजराती, बंगला, अवधी और ब्रज भाषा आदिओ में हिन्दी की छाया और उसका स्वरुप किसके हृदय में अनुरुप नहीं दीखेगा। भारत के सैकड़ों सम्प्रदाय यदि आज भावात्मक दृष्टि से एक दूसरे के निकट है तो इसका श्रेय हमे हिन्दी को अवश्य देना पड़ेगा। और यदि कहीं कोई बाधा इसकी आधार भूत धारा को अवरुद्ध करने का साहस कर रही है तो उसे हिन्दी के माध्यम से ही बाधित किया जा सकता है। हिन्दी भाषा की समृद्धि में ईसाई मुसलमान हिन्दू देशी विदेशी सभी सम्मिलित हैं इसीलिये विश्व के समस्त विद्वानों में हिन्दी के प्रति विद्वष ने कभी भी अपना रोष व्यक्त नहीं किया।

वस्तुतः वास्तविकता तो यही है कि भारत में जब हिन्दू है तो हिन्दी भी रहेगी जब हिन्दुस्थान है तो हिन्दी को भी स्थान मिलेगा ही।

हिन्दी को भूल के भूले में भुलाते हुऐ जब हम अंग्रेजी की चङ्गेजी नीति पर लट्टु होते है तब हम अपनी संस्कृति के महान् समुपासक उन महापुरुषों का अपमान करने पर उतारु हो जाते है, जिन्होंने "भारतीय संस्कृति को अङ्ग्रेजी माध्यम से नहीं अपितु हिन्दी माध्यम से उसे सात समुद्र पार पहुँचाया है। हम अंग्रेजी का पक्ष लेते ही भारतीय संस्कृति" के सर्वस्व महाकवि तुलसी दास

को सहृदयों के हृदयो में उदास कर देते हैं, सूर को सुदूर पहुंचा देते हैं, अब्दुल रहीम खान खाना को हिन्दी कविता रत्न की खान से ही निकाल फेंकते है. रसखान से हिन्दी रसकी खान बनने का मानो अधिकार ही छीन लेते है। हिन्दी की वेदी पर बलि जाने वालों का आत्म बलिदान बलात्, प्रबल वेदना की मनमानी पर भेट कर देते हैं। आज हिन्दी के रुप में भारत माता के माथे की बिन्दी पूँछो जा रही है। हिन्दी भाषा पर कुठाराघात भारतीय एकता की आन पर वज्रपात ही कहा जाना चाहिये।

हिन्दी भाषा के जिस स्वर्ण युग में हिन्दू मुस्लिम एकता का सूत्रपात हुआ और हिन्दू रमणियो ने यवनों के जिन निष्करण करों को रक्षा बन्धन के वन्धन मे बाँधा, हिन्दू राजाओ ने रुप सम्बन्ध जोड़ कर जिस पारिवारिक भावना के द्वारा"वसुधैव कुटुम्बकम्" का आदर्श उपस्थित किया, उदारमना सूफी मुसलमानों ने जिस सङ्कीर्णता से अपने सम्प्रदाय का उद्धार करने के लिये भारतीय वेदान्त शास्त्र के सिद्धान्तों की शरण ली। दुःख का विषय है कि आज उसी महत्त्व पूर्णं परम्परा की प्रवृत्ति का भावात्मक प्रभाव कुछ ना समझ स्वार्थियों की दुर्बुद्धि से पराभूत हुआ जा रहा है।

यह कैसी बिडम्बना है कि ९९ प्रतिशत जनता अंग्रेजी के व्यवहार से अनभिज्ञ है, फिर भी उसे उस पर थोपा हुआ है। जिसे अंग्रेज भी स्वयं अपूर्णं मानते हैं उसे राज भाषा का पद दिया हुआ है और इतने पर भी कहा जा रहा है कि जब तक

समस्त भारत में हिन्दी अपने पैर नहीं फैलाती उसे पूर्णतया स्वीकार नहीं किया जा सकता:-

क्या बिना पानी में घुसे भी किसी को तैरना आया है। बिना चूल्हे पर चढ़ाये भी भोजन किसी ने बनता देखा है ? बिना ईंट पत्थरों और बिना गारे चूने आदि के किसी ने मकान चिना जाता देखा है ? तब बिना राजकीय सहायता के हिन्दी का प्रसार सर्वत्र कैसे सम्भव है ?

संसार के समस्त देशो मे सर्वत्र उनकी भाषाओ का आदर है इसीलिये उनमे एकता के दर्शन मिलते है किन्तु ! हन्त हमारे ही देश में हम अपनी भाषा के व्यवहार से वञ्चित है। हमारे वे बलिदान जिन में भूखों मर कर साहित्यिको ने साहित्य सृजन किया है कुछ अहङ्कारी और जिद्दी दुर्जन जनों की धृष्टता के कारण क्या धूलिसात् नहीं हुए जा रहे है। क्या हम अपनी भावा-त्मक एकता की स्वयं आत्म हत्या नहीं कर रहे ? क्या हम अपने पूर्वजों के स्वाभिमान का स्वयं ही संहार नहीं कर रहे ? और क्या हम संसार की दृष्टि मे अपना निरादर स्वयं ही नहीं बढ़ा रहे ? क्या तब हमें डूब नहीं मरना चाहिये जब दूसरे देशों के लोग अपने देशों में हमें अपनी भाषा में बोलने के लिये बल देते है ? क्या हमें तब भी लज्जा न आनी चाहिये जब विदेशों के विद्वान

आकर हमें हमारी भाषा में नमस्ते कहकर गौरवान्वित करते है ? क्या हमारे पश्चात् आने वाली पीढ़ियों को हम जो पढ़ा रहे है उससे हम अपनी संस्कृति की जडे स्वयं ही नही खोद रहे हैं ? शिक्षा के अनिवार्य क्षेत्र में विदेशी भाषा का बीज बोना क्या हमारी बुद्धि का दिवाला नहीं है ?

क्या कोई देश अपनी सभ्यता और संस्कृतिका गला घोंट कर भी जीवित देखा गया है ? क्या कोई क्षेत्र अन्नके स्थान पर काँटो को बोकर भी किसी का पेट भरता पाया गया है ?

वस्तुतः—

दिल के फफोले जल उठे सीने के दाग से ।
इस घर को आग लग गई घर के चिराग से ।।

११- जगद्- गुरु भारत

ओ३म् इडा सरस्वती मही तिस्त्रो देवी मयोभुवः ।
यज्ञं सीदन्त अरिस्त्रिधः ॥

यह तो (आप) सब जानते ही हैं कि—

उपमान विहीन रचा विधि ने बस भारत के सम भारत है ॥

आज तक न जाने कितने वर्ष अतीत की गोद में जा बैठे हैं और न जाने कितनी शताब्दियाँ मुँह ढाँक कर सो गई हैं, एक के बाद एक-२ करके युग के युग भी परदे की ओट में बैठते जा रहे हैं परन्तु उत्तर की ओर मुँह उठाकर देखिये वह सामने हिमालय शुभ्र हिम मण्डित मुकुट धारण किये लहलहाती हरित कानन की पंक्तियों का उत्तरीय ओढ़े शुभ्र सलिला भगवती भागीरथी का उपवीत पहने, मानों अपनी ही कोख में तपस्या करने वाले सहस्रों तपस्वियों की तपस्या का मूर्त रुप बनकर भारत की मङ्गल कामना का अनुष्ठान कर रहा है। सृष्टि के आदि में आदि ऋषियों का वेदज्ञान यहीं से पल्लवित- विकसित और सुरभित हुआ है। जल प्लावन के कारण अखिल भूमण्डल जब जल समाधि ले रहा था तब यहीं की स्थली से मनु की सन्तान आर्यों की निवास भूमि को सौभाग्य उपलब्ध हुआ है। आर्यों के बाहर से आने का प्रवाद यद्यपि अमृत नीर गर्भा मन्दाकिनी ही अपनी कलकल ध्वनि से दूर कर रही है फिर भी महिमाशाली हिमालय का इतिहास इसके शमनार्थ कुछ कम महत्व नहीं रखता। ब्राह्मण ग्रन्थ, उपनिषत्

काल, सूत्रकाल, स्मृतिकाल और दर्शन काल की ललितवेला में प्रवाहित होने वाली अध्यात्मज्ञान की धवल धारा को भी यहीं से प्रवाहित होकर विश्व की वीथियों में बहने का अवसर प्राप्त हुआ है । 'पश्य देवस्य काव्यं न ममार न जीर्यति'' की छत्रछाया में बैठकर साहित्यकाल की सुखद उषावेला में जब साहित्य की सुधा छिटकती हुई लालित्य कलित कल्पनाओं का अलौकिक आकल्य लेकर सकल लोक लोकान्तरों को आकर्षित कर रही थी तब ऊत्ताल तरल तरङ्गों के दीर्घ बाहु उठाकर आगे बढने से रोकने के लिये कटिवद्ध हुआ भी सागर बाधा डालने के लिये समर्थ न हो पाया था। यहाँ के कला कौशल ने जिस कौशल के साथ अपनी शिल्प कला के प्रभाव से भूमण्डल के समस्त भूभागों को प्रभावित किया है, उसका वैभव भारतीय स्थापत्य कला की अविकल अनुकृति करने वाली देश विदेश की शिल्पकलाओं से पूछिये। क्या यह आश्चर्य नहीं है कि विश्व के कला विदों का पाण्डित्य भारतीय सङ्गीतकला के निर्धारित सप्त स्वरों से अधिक एक भी स्वर की धारा में नहीं बढ पाया है ? छन्दः शास्त्र पिङ्गल के निर्धारित छन्दो मार्ग से पृथक् क्या आज तक भी विश्व का कोई छन्दोविज्ञ किसी नूतन पद्धति के निर्माण में विश्रुत हो पाया है ? संस्कृत की वैज्ञानिक वर्णमाला के ३३ व्यञ्जनों और नवस्वरों को लांघ कर क्या आज तक भी कोई विश्व का भाषा शास्त्री आगे बढ सका है ? आयुर्वेद की वैज्ञानिक वात पित्त, कफ की सूक्ष्म पद्धति कर्म जन्य भोग की गहराई तक पहुँच कर पथ्य द्वारा, औषधियों द्वारा, सूर्य की रश्मियों से अग्नि होत्र के धुवें से, जल के वैज्ञानिक उपयोग से शुद्ध वायु के विविध प्रयोगों से, वैद्युतीकरण के विविध

उपकरणों से और योग शक्ति के विविध उपायों से समृद्ध होकर जिस क्षेत्र तक व्याप्त हुई है क्या विश्व की किसी पद्धति ने आज तक भी उससे पृथक् आविष्कार किया है ? सहस्त्रों वर्षों तक जीने का सौभाग्य प्रदान करने वाली आयुर्वेद की कल्पचिकित्सा क्या विश्व के किसी भी चिकित्सा शास्त्र को चुनौती नहीं है ? मैस्मेरिज्म हिप्नोटिज्म और जादूगरी की विद्या क्या भारत की योग विद्या और तन्त्र विद्या के परिणाम नहीं हैं ? भारतीय गणित विद्या ग्रोर ज्योतिष शास्त्र के मूल सिद्धान्तों की खोज ही क्या आज के विश्व वैज्ञानिकों कीविद्युत गति का कारण नहीं हैं ? आज लोक- लोकान्तरों में (जा रहे हैं एवं) जाने की तैयारियां हो रही हैं किन्तु हमारे सौभाग्य ने न जाने कितनी बार वहाँ के भ्रमण का वह आनन्द लूटा है जिसे आज के विज्ञजन कल्पना के स्वल्पकक्ष तक भी नहीं देख पाये हैं। रामायण के पुष्पक विमान की घटना के अध्ययन ने जब पाश्चात्य विद्वानों के मस्तष्क में चक्कर दिया तब सहसा उनके दुस्साहस ने उसके अस्तित्व पर जो वज्र प्रहार किया उसी की प्रतिध्वनि ने उसके कपोल कल्पित होने का उद्घोष तक कर डाला।

अभिज्ञान शाकुन्तल के प्रणेता महाकवि कालीदास के इस वर्णन में—

> शैलानामवरोहतीव शिखरादुन्मुच्यतां मेदिनीः,
> पर्णाभ्यन्तरलोनतां विजहति स्कन्धोदयात्पादपाः ।
> सन्धानं तनुभाग नष्ट सलिल व्यक्तया व्रजन्त्यापगाः
> केनाप्युत्क्षिपतेव पश्य भुवनं मत्पार्श्वमानीयते ।।

जगद् गुरू भातर को भारत नाम देने वाले महाराजा भरत के पुण्य पिता दुष्यन्त इन्द्रपुरी के राक्षसों का संहार करके मर्त्य लोक की और उतरते हुऐ इन्द्र के सारथी मातला से कह रहे हैं कि विमान के तीव्र वेग के कारण ऐसा प्रतीत हो रहा है जैसे पर्वतों के शिखर से भूमि नीचे उतर रही है। पत्तों में छिपे हुए पेड़ों के तने बाहर निकलने लगें हैं बृहद् भूमि के समतल भाग में छिपी हुई नदियाँ अब रेखाकार सी दीखने लगी हैं। क्या कवि के काव्य का यह कौशल हमारे विज्ञान की वास्तविकता की ओर पूर्ण सङ्केत नहीं कर रहा ? और हमारी प्राचीन धनुर्विद्या के वे अस्त्र शस्त्र शत्रु का संहार करके वापिस प्रयोक्ता के पास आ जाते थे- क्या आज के लङ्गड़े आविष्कारों का उपहास नहीं कर रहे ? पृथ्वी के समतलों, पर्वतों के ऊबड़ खाबड़ प्रदेशों, भीषण लहरों वाले भयावह आवर्तों से ओतप्रोत जलीय भागों और झञ्झावातादि के विविध उपद्रवों से व्याप्त आकाश के मार्गों में अप्रतिहत गति से दौड़ने वाले रथ जिनका कि वर्णन—

"उदन्वदाकाश महीधरेषु गतिर्विजघ्ने नहि तद्रथस्य,, के नाम से किया गया है-क्या आज की यन्त्रविद्या को चैलेञ्ज (चुनौती) देने के लिये पूर्ण समर्थं नहीं हैं। समस्त भूमण्डल को क्षण भर में धूलिसात् कर देने वाला अश्वत्थामा के द्वारा छोड़ा गया ब्रह्मास्त्र अर्जुन के द्वारा विफल कर देने पर भी क्या भारत की जगद् गुरुत्व की उपाधि को चार चाँद लगाने के लिये पर्याप्त नहीं है ? भगवान कृष्ण का सुदर्शन चक्र शत्रु की कन्धरा को स्कन्ध प्रदेश से च्युत करके पुनः प्रयोक्ता के हाथों में आ बैठने का

जादू दिखा कर भी क्या शस्त्र विद्या के विकास की सीमा को पार नहीं कर रहा ? शत्रुओं की गतिविधि का सचित्र पूरा पता लगाने वाला व्योमचारी विहङ्गों का आविष्कार क्या भारत को महत्ता की और नहीं ले जा रहा ? इसी प्रकार सर्प विद्या, भूत विद्या, वनस्पति शास्त्र, जीवाणु विद्या, पशुशास्त्र. भूगर्भविद्या, नक्षत्रविद्या, सङ्गीत-शास्त्र, कोटिल्य शास्त्र, जलविद्या, वायुविद्या, अग्निविद्या, भाषाविज्ञान, आकृति विज्ञान, चित्रकला, वास्तुकला, स्थापत्यकला, नृत्यकला आदि के चमत्कारों के कुछ सङ्केत तो दूर इनके नाम लेने (लिखने) मात्र से ही (घण्टों बीत जायेंगे) पृष्ठों भर जायेंगे। आप यदि चौंक न जायें तो क्या मैं इतना (कहने) लिखने का साहस कर लूं कि हमारी विद्याओं के भण्डार पुस्तकालय यवनों के कुशासन के समय अग्नि की भेंट न किये गये होते और उनके अमानुषिक कुकृत्यों के शिकार न हुए होते तो भारत की दस सहस्र विद्याओं का चमत्कार पश्चिम के विपश्चित वर्ग को ऐसा झकझोर डालता कि उन्हें पश्चिम के गीत गाना गधे के रेंकने का अभिनय प्रतीत होता। यह वही जगद् गुरू भारत है जहाँ की तक्षशिला और नालन्दा नाम के विश्वविद्यालयों में समस्त भूमण्डल के विज्ञ वर्ग आकर अपनी ज्ञान पिपासा बुझाया करते थे। इसी कारण हम कहा करते थे।—

> एतद्देश प्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः।
> स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्व मानवाः।।

हमारी कीर्ति ने सात समुद्र लांघकर एक जर्मन वैज्ञानिक के मुंह से यहाँ तक कहलवा डाला कि हम पश्चिमियों का विज्ञान जहाँ

जाकर समाप्त होता है भारत का विज्ञान वहाँ से प्रारम्भ होता है आज भी अष्टाध्यायी के अद्‌भुत व्याकरण को देखकर पश्चिम के भाषाशास्त्रियों का स्वर भारत की पूर्ण वैज्ञानिक संस्कृति की प्रशंसा में वीणा तन्त्री के झंकृत तार की तरह तार तर होकर निनादित हो रहा है ! भारतीय संस्कृति और भारतीय सभ्यता आज भी महर्षि दयानन्द, महात्मा गाँधी और पण्डित नेहरु की छत्र छाया में पल्लवित होकर विश्वशान्ति के प्राणभूत पञ्चशील के सिद्धान्तों में फूट कर विश्व के कोने-कोने में व्याप्त हुई जा रही है। तभी तो हम कह रहे हैं :—

ईराक मिश्र रोमाँ सब मिट गये जहाँ से,
लेकिन अभी है बाकी नामो निशाँ हमारा ।
कुछ बात है कि हस्ती मिटती नहीं हमारी,
जब कि रहा है दुश्मन दोरे जहाँ हमारा ॥
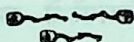
१२- भारतोन्नति

किसी समय हम बड़े अभिमान से कहा करते थे कि—

एतद्देश प्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः ।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वं मानवाः ॥

अर्थात् हे संसार के पुरुषो ! इस देश के पैदा हुए ब्रह्मणों की चरण शरण में रहकर अपने-२ चरित्र की शिक्षा लो। वास्तव में उस समय ऐसा कहना उचित भी था। संसार ने भी इस आह्वान को सुना और भारत के पास आकर शिक्षा ली। उसी का परिणाम है कि विश्व के उन्नत देश उन्नति के प्रखर शिखर पर खड़े होकर हमें प्रेम और आदर की दृष्टि से आज भी देख रहे हैं। और विश्व के शान्तिदूत पं. नेहरु की ओर स्नेह की दृष्टि से निहार रहे हैं परन्तु हमारे शान्ति सन्देश के शुभ्र शशि को एक ओर चीन का राहू दूसरी ओर पाकिस्तान का केतु ग्रसना चाह रहा है। इतना ही नही अपितु पुर्तगाली साम्राज्यवाद का पिशाच भी अभी गोवा पर दाँत गाड़े बैठा है। कहीं नागा लोग अपने प्रदेश बनाकर इतरा रहे हैं तो कहीं सिख सम्प्रदाय अपने सूबे के लिये षड्यन्त्र पर उतर रहा है। मुसलमान लोग पाकिस्तान लेकर ही सन्तुष्ट नहीं हुए अपितु वे अभी भारत में भी चप्पे- चप्पे को पाकिस्तान बनाना चाहते हैं। भाषा के आधार पर प्रान्तों की रट तो प्रतिदिन का मन्त्र जाप सा ही हो गया है। शिक्षा का क्षेत्र शिक्षित समाज बनाने के लिये उजड़ा सा ही पड़ा है। आज उससे आदर्श वादी गौरव गरिमा का गान तो स्वप्न है ही किन्तु युवक युवतियों और

बालक बालिकाओं के उज्ज्वल भविष्य को भी भीषण भय का भूत चिपटा जा रहा है। व्यवहार के क्षेत्र को तो पूछिये ही क्या? आज उसमें घूस खोरी पूर्ण यौवन पर है। चोरबाजारी सौलहों शृङ्गार किये भोले भाले भले पुरुषों को भी अधीर किये दे रही है। एक ओर बलात्कार अपनी प्रबल वासना की सरिता में सुशील सती साध्वियों के सतीत्व को डुबाने पर उतारु हो गया है, तो दूसरी ओर भ्रष्टाचार सत्यता के परमपुजारियों की वास्तविकता को भी अपनी प्रभूत प्रलोभन भरी लोभ लीला के रङ्गमञ्च पर ललकार रहा है, कहीं जनता के स्वास्थ्य के शत्रु खाद्यपदार्थों में अनमेल वस्तुओं के मिश्रण से उपलब्ध द्रव्य की अथाह राशि से अपने सुख सदन खड़े कर रहे हैं, तो कहीं दस्युदल दिन दहाड़े स्वदेश के सर दर्द बनकर दीन दरिद्रों तक के सर्वस्व लूटने के लिये सङ्कटों के घने घटाटोप की तरह छाये जा रहे हैं। बिचारी भव्य सभ्यता आसू टपकारही है। है। प्राचीन संस्कृति चिल्ला रही है। ऋषि परम्परा कराह रही है आदर्शवाद का सर चकरा रहा है। भारतीय गौरव का मुंह उतर रहा है। स्वदेश का महत्व लज्जा से जमीन में गड़ा जा रहा है। आज कर्तव्य-परायणता को लकुआ मार गया है। बिचारा परोपकार करवटें बदल रहा है। विवेकशीलता अपना माथा पटक रही है। ऐसी अवस्था में भारत की उन्नति का विचार सचेता पुरुषों के लिये एक गूढ पहेली बन रही है। बड़े-बड़े नेता तक भी इस पहेली का समाधान सोचने में हिचकिचा रहे हैं तब यह (अनुभव शून्य ज्ञानलव दुर्विदग्ध किशोर बालक) लेखक इस सम्बन्ध में मुंह खोलता हुआ छोटे मुंह बड़ी बात ही कह रहा है। (फिर भी इन

प्रामाणिक गुरूओं के चरणों में बैठकर जो सुना है उसे सुनाने में तो मुझे साहस करना ही होगा।)

प्राचीनकाल में वेदवेत्ता, सदाचारी निस्पृह महापुरुषों का ही प्रामाण्य होता था किन्तु आज तो ऐरे गैरे नत्थू खैरे किसी का भी शासन में प्रवेश होते ही बाबा वाक्यं प्रमाणं हो जाता है। यही कारण है कि आज देश पार्टियों में बंटकर देश की समस्याओं से निबट नहीं पा रहा। हमें आज अपना शासनतन्त्र और निष्पक्ष दृष्टि से देखना होगा। हमें अपना संविधान वेदानुमोदित, श्रुति स्मृतियों और धर्म सूत्रों के आधार पर परिवर्तित करना होगा। जब तक वेद की शिक्षाओं को श्रद्धा का पात्र लेकर भिक्षा के लिये आवश्यक न बनाया जायगा, जब तक सदाचार की पवित्र वेदी पर ब्रह्मचर्य का पुण्यव्रत न लिया जायगा, जब तक सद्गुरुओं के गौरव गिरि पर आरुढ होकर वैदिक सभ्यता के धवल ध्वज को नहीं फहराया जायगा, जब तक "सं गच्छध्वं सं वदध्वं सं वो मनांसिजानताम्" का दिव्य आदर्श जन-जन मानस में नहीं बैठाया जायगा, जब तक परस्पर कलह कालुष्य कलुषित मनुष्य समाज स्वार्थ तत्परता की सर्वसंहारिणी प्रवृत्ति से ऊबने के लिये वैदिक संस्कृति की सर्वपाप-नाशिनी विशुद्ध मन्दाकिनी पर नहीं भेजा जायेगा, जब तक ज्ञान पिपासु जन ऋषि परम्पराओं में पल्लवित पवित्र शिक्षा के अक्षत-क्षेत्रों में जाकर भ्रमण नहीं करेंगे, जब तक सत्व गुण की उषा में उठकर मानव समाज आत्मचिन्तन की सन्ध्या नहीं करेगा, और जब तक निष्पक्ष भाव से आत्मदूषणों को खोद- खोद कर दूर करते

का प्रायश्चित्त न करेगा:— तब तक ज्ञान विज्ञान की अधिष्ठात्री, सर्व सम्पदाओं की खान, सर्व महत्ताओं की जननी यह ऋषि मुनियों की पावन भूमि अपावन ही रहेगी । आज हम पाश्चात्य सभ्यता का अन्धानुकरण करने में अपने को धन्य-धन्य समझ रहे हैं किन्तु यह भूल रहे हैं कि अन्ध परम्परा की जननी यह प्रकृति की विकृतिपूर्ण उपासना हमें--

अन्धन्तम: प्रविशन्ति येऽसम्भूतिमुपासते ।

ततो भूय इवते तमो य उ सम्भूत्याँ रता: ॥ की ओर ढकेल रही है । आज संस्कृत भाषा निराशा की लोल लहरियों में हिलोरें खाकर घुट रही है और अंग्रेजी भाषा अपने आशातीत सफलता के रिझाने वाले मजबूत झूले में मस्त होकर झूल रही है । आज अपनी संस्कृति का पक्षपाती शिक्षक वर्ग दाने-२ के लिये तरस रहा है । और सात समुद्र पार की सभ्यता का गुणगाना हृदय में फूला नहीं समा पाता । इस विषमता को दूर करने के लिये हमें अपने शिक्षणालय झोंपड़ियों में बसाने होंगे, और अपने शासकों को सर्वस्व दक्षिण यज्ञ करने के लिये वशिष्ठ जैसे गुरु बनाने होंगे आज हमें आर्य समाज की शुद्धि नये सिरे से करनी चाहिये । गुरुकुलों के प्रकारों में परिवर्तन नये सिरे से करना होगा । शिक्षा पद्धति का महत्त्व फिर से सोचना होगा ।

ऐ भारत के भाग्य विधाताओ ! प्राचीन पद्धति की ओर लौटो और पाश्चात्य सभ्यता की उन्हीं बातों का आदर करो जिनका हमारी पद्धति से विरोध नहीं है ॥

—:o:—

१३- अखण्ड भारत

यद्यपि आज पुण्य भारत के भाग्य को राहु लगा हुआ है न जाने कितना भाग आज वह ग्रसे हुए है। किन्तु हम भारतीयो को तब तक विश्राम नहीं लेना चाहिये जब तक भारत अखण्ड न हो जाये ।

हमारे भारत की सीमाये पूर्व समुद्र और पश्चिम समुद्र से पाणि ग्रहण किये हुए है उत्तर में हिमालय युगों से शुभ्र हिम जटित मुकुट धारण किये हुए हैं दक्षिण में सागर न जाने कितनी शताब्दियों से अपनी उत्ताल तरङ्गों से भारत के पैंर धो रहा है। हमारे बाहुबल ने अपनी विद्या और बुद्धि का सहारा लेकर समस्त विश्व पर शताब्दियों नहीं युगों तक ऐसा शासन किया है जिसमें कभी भी तत्रत्य प्रजा के स्वल्पीय असन्तोष ने सर तक भी नहीं उठाया। अमेरिका ने उत्तान पाद के सिक्कों का मिलाना बृहदग्नि कुण्ड का पाना पूर्ण प्रमाण प्रस्तुत कर रहा है कि हमारा साम्राज्य पाताल तक फैला हुआ था जावा में पाषाण लिखित रामायण का उपलब्ध होना, सुमात्रा में राम की पूजा का पर्व मनाना, बोर्नियों में हिन्दुओं के रस्मरिवाजों का आज तक पाया जाना, अफगानिस्तान, बलोचिस्तान, अरब और अरब देश के साथियों में हमारी संस्कृति का मिश्रण होना क्या भारत के स्वर्ण युग के स्मरण दिलाने में औचित्य नही रखते ? आज जिस देश को जर्मन कहते है वह कभी शर्मन प्रदेश था यहाँ के कुछ उच्च मस्तिष्क आर्यों का विज्ञान तब उनमें हिलोरे मार रहा था और वे अपनी गौरव गाथा के

पृष्ठ अपनी मातृ भूमि के कण-कण पर लिख रहे थे। वे तो आज भी स्वकीय पुण्य सम्बन्ध भारत की संस्कृति से जोड़ने में अपना गुरू गौरव समझ रहे है। विश्व के बड़े-बड़े इतिहास साक्षी हैं कि भारत का अखण्ड मण्डल विश्व के गौलार्ध नही अपितु समस्त भूगोल पर अपनी छाया विस्तृत करके अपनें दिव्य आदर्शो की महत्ता प्रतिफलित करता रहा है।

परन्तु आज हम उस भारत की पीठ पर खड़े हुए है जिसकी गर्दन कटी हुई है हाथो पैरो की उंगलियाँ छिन्न- भिन्न हो गई है कही गोवा का प्रश्न कलावाजियाँ खा रहा है तो कही पूर्वी बङ्गाल से शरणार्थियो की समस्या मुंह बाये खड़ी है कही पाकिस्तान काश्मीर को निगलना चाहता है तो कही भारत की सीमाओ पर तस्कर व्यापार खुले साँड की तरह डकराता फिर रहा है। कही सिक्खों को सिक्खस्तान बनाने का खफ्त सवार हो रहा है तो कही अंग्रेजी को राष्ट्र भाषा के स्थान पर बैठाने के लिये दक्षिण से हवाये बहरही है। एक ओर सम्प्रदाय वाद भारत की एकता से परिहास कर रहा है तो दूसरी ओर स्वार्थवाद भ्रष्टाचार के रुप में फूट कर भारत के गौरव को कलङ्कित कर रहा है। आज भी जब कि भारत के चारों ओर सामाज्यवादियों की नोटों सीटो के नाम से सैनिक गुट बन्दियाँ फूलती फलाती जा रही है। तब बरसात में होने वाले तरह-तरह के कीड़ों के समान न जाने कितनी राज-नीतिक पार्टियां जन्म ले लेकर अपने-२ स्वार्थों का नाटक खेलने में हिचकिचाहट का भी अनुभव नहीं करती आज हमारी सीमाओं

के चारों ओर ईसाइयो का धार्मिक प्रचार अपनी कूट राजनीति का दाव खेलने के लिये सेवा के नाम से जो जाल फैला रहा है वह भारत की असावधानी पर ही जीवित है। पाकिस्तान की स्वार्थ पूर्ण राजनीति ने अमेरिका की साम्राज्यवादिनी दुर्भावना से जो अभिसन्धियाँ की हुई है क्या आप यह समझते हैं वह लंगड़ी है ? या वह शक्ति हीन है ? ध्यान रखिये:--

उत्तिष्ठमानस्तु परोनोपेक्ष्य: पथ्यमिच्छता ॥
समौहि शिष्टैराम्नातौ वत्स्र्यन्ता वामय: सच ॥

यदि और भी कुछ नहीं तो कम से कम पाकिस्तान की अठखेलि को देखकर इतना तो हमे अनुभव करना ही पड़ रहा है कि —

कहु रहीम कैसे निभै केर बेर को सङ्ग ।
वे डोलत रस आपने इनके फाटत अङ्ग ॥

देखिये भारत की अखण्ड भावना में लगी हुई ये अग्नि की लपटें यदि प्रतिक्रिया की प्रबल सलिल धारा से शान्त न की गई तो मुझे भयं है कि कहीं छत पर पुकारते ही कदमों पर खड़े होने का वचन देने वाले हमारे रूसी भाई रक्षा के नाम पर ही हमे हड़प न जाये। यह कितने आश्चर्य का विषय है कि काश्मीर के नाम पर भारत को हड़पने की इच्छा वाले अपनी रचनात्मक योजनाओं को लात मार केवल सैनिक शक्तियो के बढाने मे ही सर्वस्व होम दें और हम मे से कोई निशशस्त्रीकरण की भावुकता में बहकर

यह भी कहता हुआ क्षम्य है कि हमें शस्त्रों की होड़ मे नही पड़ना चाहिये क्योंकि बिना अमेरिका को इच्छा के पाकिस्तान हम पर आक्रमण नही कर सकता। हम ऐसा कहते हुए भूल जाते है हैं कि जर्मनी से सन्धि बद्ध भी रूस जर्मनी से आक्रान्त हो चुका है और जर्मनी पर आक्रमण करता हुआ रूस मित्र राष्ट्रो का सौहार्द लेकर भी उनसे फट गया है। ब्रिटेन के साथ कन्धे से कन्धा मिलाकर मित्र पर आक्रमण करने वाला फ्राँस आज कई बातो मे ब्रिटेन से नाकभौं सिकोड़ रहा है। पण्डित नेहरु एक दिन अमेरिका में जाकर कम्युनिस्टो की धज्जिया उड़ाया करते थे किन्तु आज वे उन्हीं के मोह पाशमें आवद्ध होकर विश्वशान्ति के स्वर्णिम स्वप्न देख रहे हैं हमे अखण्ड भारत की भूरिभावना का भव्य भवन यदि अवश्य निर्माण करना है तो मुझे खुलकर कह लेने दीजिये कि :–

समानी व आकूतिः समाना हृदयानि वः ।
समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति ॥
समानं मन्त्रमभिमन्त्रये वः समानेन वो हविषा जुहोमि।
मा भ्राता भ्रातरं द्विक्षत् मा स्वसारमुत स्वसा ॥
अन्योऽन्यमभि हर्यंत वत्सं जातमिवाहन्या
यदि नो गां हिंसि यद्यश्वं पुरुषं जगत्
तंत्वा सी सेन विध्यामो यथानोसोऽवीरहा

और इतना तो मुझे कहने के लिये अधिकार है कि प्रतिक्रिया वादी तत्वो को विनष्ट करने के लिये सर्व प्रकार से समर्थ आज के आदर्शवादी शासनो को कड़ा होकर अग्रसर होना चाहिये।

"कांग्रेस महात्मा गांधी की व्याख्या पर अहिंसा का प्रयोग न करें अपितु महर्षि दयानन्द की व्याख्या पर उसका प्रयोग करे। धर्म निरपेक्षिता का यह अर्थ कदापि न होना चाहिये कि ईसाइयत का प्रचार उच्छृङ्खल होकर इस देश की मर्यादा का गला घाट दे। यदि देश को ऊँचा उठाना है तो जहां सब से प्रीतिपूर्वक धर्मानुसार व्यवहार के आप पक्षपाती है वहाँ आर्य समाज के सातवे नियम का यथा योग्य शब्द उसमें और जोड़ना पड़ेगा।"

हमारी सरकार जहाँ तहां विश्व विद्यालय आदि खोल कर जहाँ आर्य समाज के आठवे नियम अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि करनी चाहिये इसको उत्तरार्द्ध को तो स्वीकार कर रही है क़िन्तु अविद्या का नाश इस पूर्वार्ध से अभी तक खिची हुई है। आज भी सिनेमें चल रहे हैं गो वध हो रहा है भ्रष्टाचार पनप रहा है। स्कूली शिक्षाओ में गाली गलौच आचार भ्रष्टता का बोल बाला है।

आर्य समाज का ९ वां नियम है कि प्रत्येक को अपनी ही उन्नति में सन्तुष्ट न रहना चाहिये अपितु प्रत्येक की उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिये। दुःख है कि जनता के द्वारा चुने हुए प्रतिनिधियों में सिवाय अपने घर भरने के दूसरा कोई लक्ष्य ही नहीं दीखता "निराश्रिया हन्त हता मनस्विता" आर्य समाज के नेतृत्व के बिना मानवता ठोकरें खाती फिर रही है। सौजन्य सिसक-सिसक कर रो रहा है औदार्य दाक्षिण्य और स्वदेश पर बलिदान की भावना को मानो आजीवन का बनवास हो गया है। वैदिक शिक्षा बिधवा हो गई है जब सन्ध्या यज्ञ और पुरश्चरण आदि

आदि आज गला पकड़ कर बाहर निकाले जा रहे है पंजाब में हिन्दी सत्याग्रह के समय हवन कुण्ड को बूटो की ठोकरों से अपवित्र किया जा चुका है। मैं पूछता हूँ कि आर्य समाज को राजनीति में कब तक नही कूदना है ?

क्या आप यही चाहते रहेगें कि देश की स्वाधीनता में सर्वस्व देकर भी अपने स्वार्थ की कोई भी माँग न करने वाले आर्य समाज को पं नेहरु बेहूदा और मूर्ख कहते रहें और द्रौपदी के खुले अपमान को आप पाण्डवों की तरह निस्तेज देखते रहें। अतः आर्य सज्जनों ! आगे बढ़ो। भारत को अखण्ड रखने के लिये आर्य समाज की विचार धारा को अग्रसर कीजिये।

आज के युग में गुरुकुल की उपादेयता के विषय में निराश व्यक्तियों के तर्क

(कुछ आधुनिक विचारकों के मत मे गुरुकुल अनुपादेय हैं उनके द्वारा इस सम्बन्ध मे सोचे जाने वाले तीक्ष्ण तर्क प्रस्तुत हैं)

सम्पादक —

आज के युग ने बहुत सोच समझ कर ही गुरुकुल की उपादेयता को तलाक दिया है। भला आप ही सोच कर देख लीजिये क्या वह सौन्दर्य जिस में पीली धोती की गाती, सूखे बालों की जटा नग्न पैरों से अभिगमन, साबुन, तैल और कङ्घी आदि से मुंह सिकोड़ने का स्वभाव कभी किसी को आकृष्ट कर सकता है? महलो से अटखेलियाँ करने वाली आज की सभ्यता झोपड़ियो के अनुराग से क्या झेंप नही उठेगी? क्या आज का युग सहन कर सकेगा कि उसकी प्रेयसी भीख माँग -२ कर अपनी गौरव गाथाओं पर गर्व करे? बिजली के लट्टुओं से जगमगाने वाले सदन टिम-तिमाते दीपकों की अन्धी रोशनी से रो उठे? रेडियो और सिनेमा के हृदय को गुदगुदाने वाली शृङ्गार भरी तरङ्गें वेद मन्त्रों के किसी को भी समझ न आने वाले सूखे उच्चारणों का मुंह ताका करे? मनमानी और स्वच्छन्दता गुरुजनों के आदेश पालन की ओर टकटकी लगाकर थकती रहा करें? मन को बहलाने वाली मिर्च मसालों की चटपटी चाट और पकौड़ी का स्वाद उबली दाल और मोटे बे छने आटे की रोटियों की सात्विकता को कोसा करे?

रङ्ग बिरङ्गी तितलियों की तरह इधर से उधर रागरङ्ग में उड़ने वाली आज की नवेलियों के साथ की सह शिक्षा वर्षो, नही नहीं युगों तक भी स्त्री मात्र के भी दर्शन न करने वाले एकान्त वास से सिर फुटोव्वल करती रहेगी ?

आज बहुत तपस्या के पश्चात् कारों और हवाई जहाजो पर चढ़कर इठलाने वाली अन्तर्राष्ट्रीय अंग्रेजी भाषा की बीसवी सदी की बैल गाड़ी पर बैठकर ऐठने वाली आज के युग की मृत भाषा संस्कृत का हृदय भरकर घूरने का सौभाग्य उपलब्ध हुआ है। प्राचीन काल का अध्यात्मवाद आज के भौतिकवाद से परास्त होकर हिमालय की कन्दराओ मे तपस्या कर रहा है। गुरु शिष्य का पावन सम्बन्ध दर-दर का भिखारी बनकर जंगलो की खाक छानने के लिये चल पड़ा है। वह देखिये प्राचीन संस्कृति की श्रद्धा के आँखों से आंसू टपक रहें हैं। और प्राचीन संस्कृति का वैभव करुण क्रन्दन कर रहा है। बिचारे प्रचीन आदर्श के मुंह पर चिन्ता की रेखाएं स्पष्ट झलक उठी है। ऋषि मुनियो का गौरव आज की चकाचौंध से चुंधिया कर:—

कटु रटति निकट वर्त्ती वाचाटास्टट्टिभः पटुर्यत्र।
अपसरणमेव शरणं मौनं वा तत्र हंसस्य
की उक्ति चरितार्थ कर रहा है।

क्या ऐसी परिस्थिति में इन गुरुकुलों की उपादेयता भारत को अभ्युत्थान की ओर मुस्काराने की भी इच्छा कर सकती है ?

आज के छात्र मण्डल की प्रवृत्ति दिन रात सूटेड बूटेड और नये-नये प्रकार की ड्रेस वाले अपने मास्टरो के देखने के अभ्यास को अपने जीवन से जोड़ कर अब क्या तिलमात्र भी हिलने को उद्यत है ? यदि हाँ तो क्यों नहीं आज गुरुकुल में इसका परिवर्तन दिखाई दे रहा और क्यों नहीं सांख्य योग, न्याय वैशेषिक और वेदान्त जैसी विभूतियों को देने वाले ऋषि मुनियों के चरित्र का अध्ययन करने वालों को सम्मान के सिंहासन पर बैठने दिया जाता है ? क्यों नहीं आर्ष प्रणाली के अध्येताओ की आज की यूनिवर्सिटियों के अंग्रेजी सभ्यता के पक्षपाती खोखले विद्वानों से ऊपर उठने दिया जाता है ? क्यों नहीं विदेशी भाषा के अनुरागी और विदेशी अध्ययन प्रणाली के संरक्षको से अधिक आर्थिक वैशिष्ट्य देकर प्रोत्साहित किया जाता है ? और क्यों नहीं प्राचीन संस्कृति और अध्यात्म शिक्षा के लिये सर्वस्व न्यौछावर करने वाली अपनी मातृ संस्था जैसी शिक्षा संस्थाओ की उपाधियां सरकार से सम्मानित की जाती है ।

क्या आप इधर भी सोचने का कष्ट करेंगे कि अपनी संस्कृति और आदर्श के कण मात्र से परिचित शिक्षा मन्त्री भी भारतीय नीति से खिलबाड़ करने वाली उर्दू पक्षपातिनी अलीगढ़ यूनिवर्सिटी जैसी साम्प्रदायिक संस्थाओं को तो लाख रुपये तक दे डाले और "वसुधैव कुटुम्बकम्" तथा साम्प्रदायिक घृणावाद को आमूल नष्ट करने वाली, एवं स्वतन्त्रता की बलि वेदी पर अपना मस्तक रखने वाली संस्थाओ को साधुवाद तक भी न दे पायें ? चलिए छोड़िये इस कथा को पर यह तो आपको सोचना ही पड़ेगा

कि आज वही अंग्रेजी शिक्षा जिसने सदियों भारतीयों की भारतीयता से परिहास किया है, आज भी ग्राम-ग्राम में पनपती जा रही है। जीवन के एक बहुत बड़े भाग के साथ व्यर्थ की पुस्तको का अध्ययन छेड़ा खानी करने के लिये खुला छोड़ दिया गया है। और यदि उसके प्रभाव को क्षीण करने के लिये किसी ने गुरुकुलीय उपादेयता के नाम पर सिर भी उठाया तो उसे दूध में गिरी हुई मक्खी के के समान निकाल कर फेंक दिया गया है।

कृपया स्वयं भी सोचिये कि जीवन भर प्राचीन संस्कृति की उपासना करते हुए भी आज के युग में प्रसन्न होकर वरदान देना तो दूर, क्या किसी ने साधुवाद भी दिया है ?

ऋषि निर्दिष्ट आर्ष प्रणाली के अध्येताओं ! आप लोगों में किन्ही ने प्राचीन महाभाष्य के अध्ययन में जीवन की आहूति देकर सच तो बताइये क्या पाया है ? किन्ही ने न्याय वैशेषिक, सांख्य योग, मीमांसा और वेदान्त के वेदाङ्ग अपने अङ्गीभूत करके क्या प्रभाव उत्पन्न किया है ? किन्हीं ने ऐतरेय, शतपथ, साम, गोपथ और गृह्य सूत्रों को कण्ठ करके किसका ध्यान आकृष्ट किया है ? किन्ही नें स्मृतियो, उपनिषदों और वेदों में घोर परिश्रम करके देश को प्राचीनता की ओर अग्रसर किया है ? किन्हीं ने यावज्जीवन ऋषि प्रोक्त त्याग के मार्ग का पथिक होकर देश का कितना भ्रष्टाचार दूर किया है ? आज की भारत की नैय्या खेने वाले शासन में कितने गुरुकुलीय बन्धु अपना कौशल दिखा रहे है ? सम्माननीय गुरुकुल शिक्षा के प्रेमियो ! जरा आप

भी विचार कर देखिये कि गुरुकुलीय शिक्षा ने कितने शिक्षा-शास्त्रियों को प्रभावित किया है ? और क्या जनता की प्रवृत्ति आज भी हमारी आँखे खोलने के लिये स्पष्ट परिलक्षित नहीं हो रही ? यह देखिये ! गुरुकुल में अध्ययन करने वालों की स्वल्प संख्या किधर संकेत कर रही है ? अपने होनहार बच्चों को प्राचीन परिपाटी की ओर घूरने वाली कालेज की शिक्षा में दीक्षित करके गुरुकुलीय शिक्षा की ओर उपेक्षित जनता क्या कह रही है ?

अपनी समुन्नत और परिपूर्ण शिक्षा की मनोवृत्ति को आज कालेजो की दूषित और खोखली शिक्षा का दास बनाने के लिये कटिबद्ध इन गुरुकुलों का प्रकार क्या गुरुकुलीय उपादेयता को सिद्ध करने में समर्थ है ?

ऐसी परिस्थिति में गुरुकुलीय शिक्षा का श्रद्धालु हृदय यदि विद्रोह करने की कुचेष्टा की ओर बढ़ चले, तो उसकी ओर क्रोध की चिनगारियां नहीं उड़नी चाहिये, अपितु उसकी विवशता पर अनुकम्पा की अमृत मन्दाकिनी ही बहानी चाहिए। आज विज्ञान के इस युग ने प्राचीन संस्कृति की श्रद्धा की पीठ पर जो करारा मुष्टि प्रहार किया है. उसकी धमक संसार के प्रत्येक प्रदेश के प्रत्येक चौराहे पर ही नहीं, अपितु प्रत्येक स्थान के चप्पे-चप्पे पर सुनाई दे रही है ? नही तो बताईये गुरुमुख से सुनते ही ज्ञानोपार्जन की प्रवृत्ति और ताड़ पत्रो पर लिखने का अभ्यास आज क्यो श्याम पट्ट (ब्लैक बोर्ड) का सहारा लेकर मुद्रित पुस्तको की ओर ताक-ताक कर पछता रहा हैं ? आज सरकण्डो की कलमें फाउन्टेन पेन

के चरण क्यों चूम रहीं है ? ग्राम के किनारे या अरण्य के सघन विटपी समूह से सटकर बहती हुई नदी के किनारों की झोपड़ियो ने इन बड़े-बड़े वेद मन्दिर के समुन्नत भवनो से क्यों समझौता कर लिया है ? शारीरिक बल वृद्धि और स्वावलम्ब के उद्देश्य का प्रतीक आर्थिक चिन्ता से मुक्त देश के अन्न से पलने के समुन्नत भावों की ओर सङ्केत करने वाली भिक्षा वृत्ति का पावन व्रत आज क्यों भोजन व्यय लेकर कालेजों के बोर्डिङ्ग हाऊस वाली प्रणाली का अनुमोदक हो रहा है ? विद्याध्ययन की समप्ति तक अपने घरो पर पैर तक न रखने की प्रतिज्ञा आज माता पिताओ के झूठे मोह से क्यो लज्जित की जा रही है ? देश के पवित्र चरित्र को दीमक की तरह चाटने वाली ये सिनेमा देखने की चाट ब्रह्मचारियो तक में भी क्यो बेरोकटोक बढ़ती जा रही है ? क्षमा कीजिये "वादी भद्रन्न पश्यति" का आधिकार प्राप्त होने से मैं आप के साथ इतना और विचार करता चलूं कि ब्रह्मचारियों को कन्याओं के साथ भ्रमण करने का दु:साहस आज कौन सिखा रहा है ?

सभ्य महानुभावों आप दु खित न हों। आज इस बहती हुई हवा को हमारी धर्म निरपेक्ष सरकार तो रोक ही नही रही है, परन्तु खेद है कि आप भी बैठे हुए माता पिता लोग अपने बच्चो को सिनेमा जाने से रोक कर और ऐसे सिनेमाओं का बहिष्कार न करके जो कुछ कह रहे है वही आज के गुरुकुलो की उपादेयता पर करारी चोट कर रही है।

—*—

आज के युग में–

१५- गुरुकुलीय-उपादेयता

आज के युग को अपनी पाश्चात्य संस्कृति के कलङ्क मिटाने के लिये गुरुकुलीय शिक्षा पद्धति के चरण चूमने ही पड़गे। पीली धोती की गाती, सूखे बालों की जटा, नग्नपैरों का अभिगमन साबुन तेल और कङ्घी आदि से मुंह सिकोड़ने का स्वभाव ही अब भारत की डूबती नैया को बचा सकता है। आज का खर्चीला स्वभाव जब तक अपने शरीर पर भभूति मसलकर, लुङ्गी बांधने का प्रायश्चित न करेगा तब तक उसके पापों के धुलने का श्री गणेश नहीं हो सकता। महलो से अटखेलियाँ करने वाली आज की सभ्यता को झोंपड़ियों के अनुराग से झेंपने की आवश्यकता नहीं, अपितु उसे अपना मुंह काला करके चुल्लू भर पानी में डूब मरना चाहिये। क्योंक कान्लेजों की परीक्षा में नकल करके पास होने वाली आज की सभ्यता ने खिसिया कर जिस प्रकार अपने गुरुजनों पर हाथ उठाने का पाप किया है उसका प्रायश्चित्त करने के लिये इस सदी के पास क्या कोई भी उपाय है ? बिजली के लट्टुओं से जगमाते सदनों को सचमुच ही टिमटिमाते दीपकों की अन्धी रोशनी से रो ही नहीं उठना चाहिये अपितु कहीं पत्थर पर पटक कर अपना मुंह भी फोड़ लेना चाहिये। आज के छात्रों की अनु-शासन हीनता ने जिस उच्छृङ्खलता को खुला छोडकर आये दिन नितनये जिन उपद्रवों की पीठ थपथपाई है क्या आज आप उसका

समर्थन करने चले हैं ? क्या आप यह चाहते हैं कि आज का को एजुकेशन शृङ्गार से फूला न समाता हुआ देश के भावी कर्णधार नवयुवक और नवयुवतियों के पवित्र चरित्रों से खिलवाड़ करता रहे ? और आजकी चमक दमक देश की गरीबी के समय एक समय भी भर पेट खाना न मिलने वाले करोडों माता पिताओं की वेबसी के साथ छेड़ाखानी करती रहे ? आज आपको युगो तक ठोकरें खाने के बाद भारत की मिली स्वाधीनता के समय स्वराज्य को सुराज बनाने का उत्तरदायित्व अपने कन्धों पर लेकर भी रंग-बिरङ्गी तितलियों की तरह इधर से उधर राग रङ्ग में उडने वाली आज की नवेलियों के साथ सहशिक्षा के बहाने मनोरञ्जन की सूझी है ? और युगों तक स्त्री मात्र के दर्शन न होने वाला एकान्तवास आपको सिर फुटौवल दीख रहा है ?

तो क्या आप यह चाहते हैं कि गङ्गा के किनारे समाधि लगाये हुए महर्षि दयानन्द अपनी वासना की पूर्ति करने के लिये आई एक युवती को माँ कहकर आदर्श उपस्थित करते हुए उस कुलीय शिक्षा को कोसा करे ? और छत्रपति श्री शिवाजी अपने सरदारों के द्वारा पकड़ कर लाई गई औरंगजेब की लड़की रोशन आरा को यह न कहते कि कहीं तू यदि मेरी माँ होती तो मैं आज कितना सुन्दर होता ? और महारानी सीता के हर लेने के बाद ऋष्यमूक पर्वत पर सुग्रीव द्वारा दिखाये गए सीता के आभूषणों को आंखों मे आँसू भरे होने के कारण पहिचानने में असमर्थ श्री राम जब यह पूछ रहे हैं कि लक्ष्मण ! क्या इन आभूषणों को पहचानते

हो ! तो यह न कहते कि:— 'केयूरे नैव जानामि, नैवजानामि कुण्डले। नूपूरं त्वभिजानामि नित्यपादाभिवन्दनात्।" अर्थात् मैं बाजूबन्द नहीं पहचानता और कुण्डल भी नहीं जानता केवल बिछुओं को इसलिये पहचानता हूँ कि प्रतिदिन प्रणाम किया करता था।

जितनी भी युक्तियां गुरुकुलो की अनुपादेयता पर (आजकल) दी जा रही हैं वह सब हेत्वाभास हैं। भला यह भी कोई उक्ति है कि आज के छात्र सूटेड बूटेड अध्यापकों देखकर स्वयं कैसे तिलमात्र भी हट सकते हैं ? यदि नहीं तो पास के गुरुकुल (काँगड़ी) में इसका परिवर्तन क्यों नहीं दिखाई दे रहा ?

हमें संसार की ओर नहीं देखना है ना ही हमें थोथे परि-णामों की ओर झाँकना है हमें तो यही देखना है कि अच्छाई का परिणाम इतिहास के पन्नों पर कैसा अङ्कित है और आज भी क्या उसके परिणाम सन्तोषजनक हैं ! चाहे फिर वे भले ही स्वल्प मात्रा में हों ! एक सेर दूध से छटाँक भर ही मक्खन निकलता है।

मैं प्रतिवादियों से पूछना चाहता हूँ कि जरा बताइये तो सही साँख्य शास्त्र को जन्म देने वाले महामुनि कपिल को कौन सी यूनिवर्सिटी ने पढाया था ? न्यायशास्त्र के तत्वों का साक्षात्कार करने वाले गौतम ऋषि कौन से कालेज में अध्ययन करते थे ? मीमांसा दर्शन के प्रणेता जैमिनि मुनि कौन से स्कूल में प्रविष्ट हुए थे ? क्या राजनीति के धुरन्धर महारथी योग की चरमसीमा

पर पहुँचने वाले योगीराज कृष्ण सुदामा के साथ सान्दीपन ऋषि के गुरुकुल में नहीं पढ़े थे ! क्या दर्शनों के प्रकाण्डपण्डित और बाल्यावस्था में ही बैराग्य से सन्यास लेने वाले तथा बौद्धमत की जड़ से नीव हिलाने वाले स्वामी शङ्कर गुरुकुल में नहीं प्रविष्ट हुए थे ? और क्या वेदों का उद्धार करने वाले, पाखण्ड की धज्जियाँ उड़ाने वाले, इस युग को नया जन्म देने वाले महर्षि दयानन्द स्वामी विरजानन्द की कुटिया में फीस देते हुए, पेन्ट कोट पहन कर सूटेड बूटेड होकर पढ़े थे ? बताइये आज के युग में महात्मा गाँधी किस शिक्षा से प्रभावित थे ! गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर के श्री शुद्धबोधतीर्थ क्या पूज्य रावजी (नरदेवशास्त्री) जैसे शिष्य बनाकर सफल नही हुए हैं ? आज अपने गुरुकुल के सफल ५०० स्नातक क्या गुरुकुलीय महत्ता को चारचांद नही लगा रहे हैं ? और क्या ग्राम ग्राम में स्कूलों का जाल बिछजाने से गुरुकुलों की उपादेयता नष्ट हो सकती है ? क्या आज के महान् सन्त श्री बिनोवा भावे के वे शब्द आप भूल गये हैं जिनमें उन्होंने स्कूल कालेजों की शिक्षा को ५ वर्ष के लिये बन्द करने को कहा था ? क्या उस घटना से अपने आँखें मूद ली हैं जब किसी स्थान पर कालेज के कुछ छात्रों ने एक वकील के लड़के का जलूस निकालते हुए वकील को उसके पुत्र के सामने नाक रगडवाकर यह कहा था कि हमारे सेक्रेटरी को थप्पड़ मारकर आपने हमारा ही अपमान किया है । आप अपना पुत्र होने पर भी उसे हमारे सेक्रेटरी की ही हैसियत से क्यों नहीं देखते और क्या आज छात्रों की अनुशासन हीनता उनका लड़कियों से छेड़ाखानी करना भारत का आदर्श बन जाये यह आप चाहते है । और क्या सिनेमाओं के अश्लील गीत गाते हुए आज के छात्र अपनी स्वच्छता और उच्छृङ्खलता का सरे बाजार नग्न नृत्य करते रहें

यह आप चाहते हैं ? अथवा क्या आप यह चाहते हैं कि अपने माता पिताओं को आज का शिक्षक सरवेन्ट कहकरअपनी पोजीशन की धाक में धब्बा न आने दे ? और क्या आप यह भी चाहते हैं कि गुरु शिष्य परम्परा, मातृ पितृ आदर्श, पितृ देवोभव, आचार्य देवोभव का गौरव ओल्ड फैशन कहकर उपेक्षा की भभकती भट्टी में झोंक दिया जाये । क्या आपको पता है कि गुरु की सेवा मात्र से विद्या के पारङ्गत होने का प्राचीन प्रकार आज कालेजों की कमर तोड देने वाली भारी फीस से दबकर सिसक रहा है ? क्या आपको पता है सब विषयों के विद्वान् एक ही गुरु के द्वारा सहस्रों छात्रों का पढाया जाना आज अनेकों मास्टरों के द्वारा भी पूर्ण न होकर ट्यूशन की ट्यून पर प्राण देने चल पड़ा है ? क्या आपको पता है कि केवल भिक्षावृत्ति से बड़े-बड़े शास्त्रों का अवगाहन आज होस्टलो और बोर्डिङ्ग हाउस के बहुव्ययसाध्य शिक्षा प्रकार पर आंसू बहा बहा कर अन्धा हुआ जा रहा है ? प्रकृति का पुजारी और भौतिक सुखों का भूखा आज की शिक्षा का स्तर भारत की प्राचीन संस्कृति को समूचा निगलने के लिये लालायित हो रहा है। भारत की प्राचीन सभ्यता से बलात्कार करने के लिये आज का कोएजुकेशन खुला छोड़ दिया गया है। जिसे देखकर शिष्टता के होठों पर लज्जा खेल रही है। सज्जनता के मांथे पर सिलवटे पड़ रही हैं। विवेक शीलता के कन्धों पर अकथनीय भार पड़ गया है। बेचारा चरित्र निर्माण आज दर-दर का भिखारी बनकर भटक रहा है और बिचारी नम्रता और सहिष्णुता के आँखों में आँसू छलक आये हैं। गुरु सेवा की भावना को सन्निपात हो गया है।

ऐसी अवस्था में गुरुकुल की उपादेयता के जब तक चरण नहीं पकड़े जायेंगे, आपकी प्रगति असम्भव है।

□□

१८

अहिंसा से ही शान्ति सम्भव है

इसमें कोई सन्देह नहीं कि आज सज्जनता पर दुर्जनता जोर जमा रही है। सौमनस्य पर ईर्ष्या और द्वेष की गृद्ध दृष्टि लगी हुयी है। शान्ति को अशान्ति घूर रही है और अहिंसा पर हिंसा सवार होकर मुस्करा रही है। यह भी ठीक है कि यह सब सृष्टि के आदि से ही हो रहा है। मैं इस बात का भी विरोधी नहीं कि हिंसा का सिद्धान्त दुष्ट व्यक्तियों के लिये है किन्तु आज विचार चर्चा का विषय है "अहिंसा से ही शान्ति सम्भव है।" आज तक के इतिहास में शान्ति के लिये जिस हिंसाका आश्रय लिया गया है वह स्वाभाविक थी अतः उसका प्रयोग भी स्वाभाविक रहना ही था किन्तु विचार तो यह है कि क्या (कभी) हिंसा से अहिंसा सिद्ध हो सकती है? क्या आजतक संसार हिंसा के बल पर स्थायी शान्ति कीं स्थापना कर पाया है? आप दूसरे की हिंसा कर कुछ समय के लिये आतङ्क बंठाने में सफल अवश्य हो जायेगे किन्तु क्रिया की प्रतिक्रिया (अवश्य) हुआ करती है। इस सिद्धान्त के आधार पर एक हिंसा के पश्चात् दूसरा प्रबल हिंसक प्रतिद्वन्द्विता मे उठखड़ा होता है। इस प्रकार उसकी परम्परा चल पड़ती है। यदि हिंसा से ही शान्ति हुआ करती तो "अहिंसा प्रतिष्ठायाँ तत्सन्निधौ वैर त्यागः" इस यम विहित आचरण से सिंह जैसे (हिंसक) पशु

कभी भी ऋषि मुनियों के मित्र न बन पाते। महान् हिंसक से हिंसक पशु भी जिस प्रकार अहिंसा सिद्ध हो जाने पर अहिंसक व्यक्ति का घनिष्ट मित्र बन जाता है उस प्रकार हिंसक व्यक्ति का आज तक कोई भी न बन पाया। श्री वशिष्ठ की अहिंसात्मक प्रवृत्ति के साथ जब तक श्री विश्वामित्र युद्ध करते रहे वह ब्रह्म पद को प्राप्त नहीं हुए किन्तु जैसे ही उन्होंने भगवान् वशिष्ठ की अहिंसा का आदर करके अपने तप में परिवर्तन किया कि ब्रह्मर्षि हो गये। अँगुलिमाल जैसे महान् दस्युराज हिंसक सम्राट को महात्मा बुद्ध ने केवल स्नेहदृष्टि के एक कोर मात्र से सर्वदा के लिए शान्त चित्त यति बना दिया था, इतिहास इसका साक्षी है। महात्मा बुद्ध ने अहिंसा के बल पर ही जो स्थायी शान्ति बौद्ध धर्म का महान् विस्तार करके की थी वह सृष्टि से लेकर आज तक के इतिहास में ऐसा अखण्ड और श्रद्धेय उदाहरण है जिसकी बराबरी आजतक नहीं हो पायी। हमारे देश में जब तक ऋषि मुनियों की अहिंसक प्रवृत्ति पर सामूहिक आचरण होता रहा, यहाँ शान्ति स्थायी रही किन्तु जैसे ही हिंसक प्रवृत्ति के सिद्धान्त ने पदार्पण किया कि अशान्ति का बोल बाला हो गया है। आप पूछेंगे कि एक सभ्य सज्जन, विश्वस्त दयालु अहिंसक व्यक्ति को लूटने वाले व्यक्ति से कैसे बचायेंगे ? मेरा उत्तर दृढ़ता और नम्रता के साथ यही मिलेगा कि अहिंसक व्यक्ति को कोई आज तक लूट ही नहीं सका। उसके पास लुटने का कोई उपकरण ही नहीं होता। हम तब लुटते हैं। जब दूसरों का हिस्सा नहीं देते या उन का हिस्सा दबा लेते है। पूंजीवाद, साम्राज्यवाद, एकतन्त्रवाद आदि जितने भी वाद अपने को या अपने वर्ग को पनपाने वाले होते हैं उन्हीं के कारण लुण्ठन, चौर्यवृत्ति और प्रवञ्चन प्रवृत्ति जन्म लेती है। रावण ने जैसे ही

देवताओं और ऋषि मुनियों के अधिकार छीने, इनके शुभकर्मों में बाधा पहुँचाई वैसे ही हिंसा का साम्राज्य बढने लगा। कम्युनिज्म का जन्म हुआ ही इस कारण से है कि एक ओर धनवान और भी धनवान बनता जा रहा है और दूसरी ओर निर्धन-निर्धन से बदतर हुआ जा रहा है। समाज की विषमता जब समाज के गुणों का अनादर करके पक्षपात पर उतर आती है तब हिंसा को निरपराध का उपहास करने के लिए अवसर मिलता है। यदि समाज अहिंसक प्रवृत्ति अपनाकर दूसरों के दुःखों को दुख समझे और सुखों को सुख समझे तो क्या (जितने भी आप सज्जन बैठे हैं उनमें) कोई भी भी ऐसा उदारण दे सकेगा कि सृष्टि से लेकर आज तक भी इस नियम के विरोध में कोई भी दुर्घटना घटी हो? दुर्योधन से पाण्डवों की लड़ाई तभी हुयी जब उसने उन्हें जीने तक के लिये पाँच ग्राम भी देना अस्वीकृत कर दिया। आज भी जो पाकिस्तान हम से अन्याय कर रहा है। उसका कारण हमारा वह आचरण है जिससे हमने झूठे हिन्दू हाने के अभिमान में उन्हें म्लेच्छ समझते हुए उनकी ऊंगली छू जाने मात्र से अपनी जाति के लालों को अपवित्र न समझते हुए भी अपवित्र बनाबना कर उनकी झोली में डालते रहे। (सभ्य सज्जनो!) मुझे क्षमा करें यह कहने के लिये कि "करनी करे तो क्यों करे कर-कर क्यों पछाताय"। पहले हम डाकुओं को जन्म देते हैं, चोरों को प्रोत्साहन प्रदान करते हैं अपने मित्रों को नहीं-२ अपने ही कुटुम्बियों को कटुव्यवहार से अर्थात् हिंसा से हिंसक बनाते हैं और फिर शिकायत करते हैं कि हिंसा को अहिंसा से कैसे सुधारे? फारस से आये रिचन अर्थात् रतन जू नामक व्यक्ति को काश्मीर में हिन्दू बनने की प्रबल इच्छा होने पर

भी जब म्लेच्छ कह कर अपमानित किया गया तब उसने इस हिंसा का बदला लेने के लिये ही काश्मीर के समस्त ब्राह्मणों को तथा अन्य हिन्दू धर्मावलम्बियों को यवनों के आश्रय में जाकर यवन बना डाला। आज जिस पाकिस्तान को हम रो रहे हैं वह किसी समय ६३००० व्यक्तियों का समूह मात्र था जो कि विदेशों से आया था। हमने घृणा और असहिष्णुता का हिंसा से समझौता करके उन्हें एक राष्ट्र का रूप दे दिया। महात्मा गान्धी और पण्डित नेहरु ने हमें इसी अपराध का प्रायश्चित्त करने के लिये पञ्चशील अहिंसा और सत्य आदि का सिद्धान्त दिया (है) था। दुःख का विषय है कि हम आजतक भी घृणा और असहिष्णुता के बहकावे में घूम रहे हैं। हम अपने ही देश में अपने ही देशवासियों के साथ अभी भी पक्षपात का ही व्यवहार कर रहे हैं। यही कारण है कि भ्रष्टाचार, घूसखोरी, वस्तुओं में मिलावट, भोग विलासिता आदि से हमारा पिण्ड नहीं छूट रहा। पाकिस्तान तो दूर रहा अपने ही प्रदेशों में कहीं नागालैण्ड, कहीं सिखिस्तान, कहीं दक्षिणवी, कहीं लङ्का की समस्या, कहीं ब्रह्मा-वर्मा की चिन्ता, कहीं हिन्दू मुस्लिम दङ्गे की विभीषिका आदि से आज हम त्राण नहीं पा रहे हैं। जिस दिन हम न्याय के आधार पर सच्चा समाजवाद अहिंसा के सिद्धान्त पर आधारित करेंगे हमारे कट्टर शत्रु भी हमारे पैर पर आ गिरेंगे। इतिहास साक्षी है जब-जब हमने अहिंसा की आवृत्ति का आदर करते हुए पारस्परिक सौहार्द्र से

आर्द्र होकर उदार दयालु और उदात्त समाज की स्थापना की लड़ाई बन्द हुई, हिंसा समाप्त हुई और स्थायी शान्ति का हमें सौख्य उपलब्ध हुआ। तीनो युगों तक हमने विश्व पर राज्य किया और हम सीना तान कर गर्व में यह कहते रहे कि- "एतद्देश प्रसूतस्य सकाशादग्र जन्मनः। स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्व मानवाः ।।" यही कारण था कि हमारी संस्कृति ने जायसी, रसखान, रहीम और कबीर जैसे अन्य धर्मावलम्बियों को भी प्रभावित किया। चीन के यात्री हमारे देश में आकर जो भाव ले गए उन्होंने यहां की महत्ता के वे गुण गान किये कि आज संसार चकित है। सच तो यह है—

साधु सराहे साधुता, यति जोखिता जान।
रहिमन सांचे सूर की वैरिहु करे बखान।।

हमें वैसे ही अहिंसक शूर होना चाहिए।

१७- अध्यात्म-चिन्तन

न जाने कबसे मानव ने अपनी सूक्ष्म शरीर की पुस्तिका पर भव बन्धन का निबन्ध लिखकर जन्म, जरा और जीवन-मरण का पुरस्कार प्राप्त किया हुआ है।

उस पुरस्कृति से वह इतना प्रसन्न है कि उसे संस्कृत संस्कारो के सौहार्द का सौजन्य भी नहीं सुहाता।

विचारा सौमनस्य उन्मनस्क होकर फीकी हंसी से भी इतना हांफ उठा है कि वह अपने चिरन्तन स्वामी के सम्मानमात्र के विचार से भी चिन्तित हो उठता है। उसकी अर्चना तो क्या उसकी चर्चा से भी अपने को विचलित पाता है। औचित्य के चत्वर पर खड़े विमलाचरण की शरण में जाना भी उसे पहाड़ पर चढ़ाई प्रतीत होती है।

भव बन्धन के निबन्धको फाड़ फेकने के लिये ज्यों ही उत्सुकता का साहस-सहसा अग्रसर होने की ठानता है कि तत्काल हठीली शठता उसे कुण्ठित करने के लिये ताल ठोक कर विकरालरुप धारण कर लेती है।

जैसे ही इस भीषणता की अनुभूति क्षण भंगुर भव विभूति से विरक्त होकर शाश्वत शान्ति के अन्वेषणार्थ शुक्ल प्रकाश की

आकांक्षा करती है बसतत्काल उसका प्रभूत अभिनन्दन करने के लिये उपनिषदे अपने को प्रस्तुत कर देती हैं। और बड़े ही प्यार से कह उठती है-हे मानव! मा गृधः (१) देखो यत्किञ्चित भी लोभ के फन्दे में न फँसना। इसका लुभावना रुप योरोपीय वेश भूषा की टाई से कम नहीं है साथ ही पेन्ट कोट की कुटिल मुस्कराहट से घटकर भी इसे नही आँकना। व्योम विहारी विहङ्गमों को भी वशीभूत करने के लिये लोभ की सुलभभूमि पर अकर्षक अशना निवारक कुछ दाने ही तो उन्हे अभिभूत करने का अभिनय करते हैं परन्तु अन्तिम परिणाम उनकी मृत्यु के अट्टहास पर ही परिसमाप्त होता है।

यह शरीर का फंदा सांसारिकता की आसक्ति ने बहुत सोच समझ कर ही बाँधा है और बँधवाया है उस शाश्वत बन्धु को भूल कर बनावटी बन्धन के अनादि मित्र इस अल्पज्ञ अन्तरात्मा ने।

सायं कालीन निशा का विकास जैसे प्रकाश और अप्रकाश की सीमा मे सिकुडा रहता है उसी प्रकार ज्ञान और अज्ञान के धुंधले अंधेरे में प्रबोध का स्वरुप संकुचित रहता है। इसी समस्या के समाधानार्थ विद्या और अविद्या का (२)अर्थात् ज्ञान और कर्म का साथ- साथ परिशीलन आवश्यकब ताया गया है। अतः इस हिरण्यमय ऐश्वर्य(३)के सर्वेश्वर न जाने कबसे अपने ही बनाये पात्र में

१– ईशावास्यमिदंसर्वं इत्यादि (२) विद्याञ्चाविद्याञ्च यस्तदित्यादि
३–हिरणमयेन पात्रेणेत्यादि,अमात्र श्चतुर्थो ऽव्यवहार्यः इत्यादि माण्डूक्योपनिषद् के अन्त में कहा गया है यद् वाचानभ्युदिते —केन

इस प्रकार ढँक गये हैं कि उन्हें देखना और दिखाना बड़े-बड़े वैज्ञानिकों के बल बूते की भी बात नहीं रही।

भले ही ढिंढोरा पीटते फिरिये कि इस दमकीले आदित्य में जो दम करने का दम खम है उसका आदि पुरुष ब्रह्मा रुप में लीन मैं ही हूँ। फिर भी नेति -२ के द्वारा प्राप्त करते ही यह उद्घोष करना पड़ही गया कि वह तो आकाश के समान नही-नही आकाश से भी महान् और उससे भी सूक्ष्म तत्त्व ब्रह्म है। इतनाही नही अपितु उसके सर्वोच्च अभिधान "ओ३म्" नामकी चतुर्थ मात्रा जिसे अमात्र, अव्यवहार्य, प्रपञ्चोपशम एवं शिव-कल्याण स्वरुप कहा गया है वह वाणी का विषय नहीं, क्यों कि जो वाणी से नही बखाना जा सकता अपितु वाणी ही उससे अपना स्वरुप पा रही है उसे कहा कैसे जाये ? परन्तु उससे मिला भी कैसे जाये ?

न जाने कब से मानव मिलने की महत्त्वाकांक्षा लेकर महानदियों के तीर्थों पर उसे पाने की पिपासा से भटकता फिर रहा है। बड़े-बड़े मन्दिरो के द्वार खोलकर असंख्यात मूर्तियो को टटोलता जा रहा है। एक बार नही अनेकों बार, एक समय नहीं प्रत्येक समय उसकी मूर्ति बनाकर दर्शन करता हुआ भी न तो सांसारिकता के बन्धनो से मुक्ति पा रहा है और नाही आन्तरिक द्वन्द्व की जटिल रचना का कोई रहस्य हस्त गत कर सका है। इसका विशेष कारण यह है कि जीव जगत् की जगमगाहट देख कर बाहर

की ओर ही देखता रह जाता है—*—अत: स्वयम्भू: भगवान् ने इन इन्द्रियों को बाहर की ओर ही देखने वाला बना दिया है। वह तो कोई बिरला भाग्यशाली ध्यानी जन होता है जो अमृतत्व की कामना से अन्दर की ओर साक्षात्कार करने के लिये इन नेत्र आदियों का व्यापार बन्द करके भगवान् का स्मरण करता है।

यदि कोई जाहे तो बाह्य जगत् में भी बाह्य समाधि लगा कर उसकी रचना का वितर्क विश्लेषण करता हुआ अनिर्वचनीय आनन्द लेसकता है। परन्तु इस आनन्द को भी लेना सामान्य नही समझना चाहिये। क्योकि जब तक ज्ञान लव दुर्विदग्धता रहेगी अहङ्कार की हुङ्कार भुजङ्ग की फुङ्कार बनी रहेगी और उस आशा नाम की नदी जिसमे विभिन्न मनोरथों का जल बह रहा है। तृष्णा रुपी तरङ्गे उत्तरङ्गित हो रही है। साँसारिक राग के बड़े-बड़े ग्राह (मगरमच्छ) बनकर अन्दर ही अन्दर तीव्रता से दौड़ रहे है। तर्क वितर्कों के विहङ्गम ऊपर उड़ रहे हैं, धैर्य धारण के धरणीरुह धराशायी हो रहे हैं। महामोह की भँवरियाँ अनभिभूत होकर भ्रमण कर रही है। उत्तुङ्ग चिन्ता के तट निकट वर्ती होकर विकटता उत्पन्न कर रहे हैं जिस नदी को कोई विशुद्ध मन वाले योगीजन ही पार कर सकते हैं उसे पार किये बिना तब तक बाह्य जगत् का आनन्द भी नही लिया जा सकता। इस जीव ने जाने कब से विमलता का विसर्जन और अविमलता का अर्जन किया हुआ है। तमो गुण प्रधान प्रवृत्तियो के होते ही सतो गुण ....

—*— पराञ्चिखानि व्यतृणत् इत्यादि कठोपनिषद् द्वितीयाध्याय चतुर्थ वल्ली

विधान की वृत्तियाँ बिखर जाती है। रजोगुण की चञ्चलता तत्काल उन्हें अपने अञ्चल में डालकर कही की कही ले उड़ती है।

इस रस्सा कशी में जन्म जन्मान्तर बीतते चले जाते हैं बेचारा जीव जब- जब उस परम ज्योति की ज्योति को मन्द करके शयन कक्ष में सोने के लिये आँखें मीचता है वह ऐसा सौ जाता है कि कई कई योनियों में पहुँचकर भी वह नही जाग पाता। वह जिस ज्योति को मन्द करना शान्ति पूर्वक शयन का साधन समझता है वही उसकी अशान्ति का दारुण दोष बन जाता हैं। तभी तो कहा है- 'तमसो मा ज्योतिर्गमय" हे प्रभो ! मुझे अन्धकार से प्रकाश की ओर ले चलो। परन्तु हन्त ! वह कुछ कह रहा है और कर कुछ रहा है इस कुछ कहने और कुछ करने के आन्तरिक दोष की जो दिशा भ्रान्ति हुई है उसे दूर करने के लिये प्रतिदिन प्रातः आदित्य की ओर अभिमुख होकर उस परमादित्य से प्रकाश प्राप्त करके ही दमलेना चाहिये। क्योंकि यदि इस जीवन में कुछ जान लिया। तो बहुत ठीक अन्यथा सब कुछ खो दिया गया हैं यह निश्चित रुप से समझ लेना चाहिग। क्योंकि "ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः" बिना सत्य ज्ञानके साँसारिक दुःखो से छुटकारा नही मिल सकता और बिना छुटकारे के प्रभु दर्शन असम्भव है।

इस मायावी जगत् के क्षणिक आकर्षणों ने तृष्णा की रज्जू से जीव को इतनी दृढ़ता पूर्वक बांध दिया है कि बिचारा यह जब तक इस रज्जूको खोलने का अभ्यास करता है बूढाहो लेता है। औरजन्म लेकर उसे पुनः खोलने का जब अवसर मिलता है वह बाल्यावस्था

की'अज्ञता का बहुत समय तक साथी रहने के कारण जो कुछ अभ्यास किया उसे भी भूल जाता है। इस भूल भुल्लैया के भीषण वातावरण से बाहर निकलना भी साधारण बात नही है इसके लिये जितना भी शीघ्र हों सके समि त्पाणि होकर उसे -*- किसी ब्रह्म निष्ठ श्रोत्रिय के पास पहुंचना ही होगा।

भूल कर भी यह नही सोच लेना चाहिये कि प्रवचनो के वचनाऽमृत मुझे अमर कर देगे। मेरी मेधा, मेरा शास्त्रोय ज्ञान और मेरा बहुश्रुत विज्ञान मुझे भवसागर से पार पहुँचाने में सफल हो जायेंगे। यह तो तभी सम्भव हैं जब प्रभु प्रसन्न होकर उसे अपने पास आजाने के लिये इच्छुक होते हैं।" कोटि-कोटि मुनि यत्न कराही। अन्त राम पदपावत नाही" ।। की बात जो साई तुलसीदास भी कह रहे है यह यह बात भी आवश्यक है कि निराशा की रस्सी से व्यर्थ हीमे अपने को बाँधने का बिचार शिथिल किया जाये जो वृत्तियाँ अनाहूत ही चिपटी जा रही है उन्हें निवृत्त करने के लिये अभ्मास और वैराग्य का सहारा लिया जाये और इस अभ्यास का प्रयत्न दीर्घ काल तक निरन्तर श्रद्धापूर्वक किया तो "स तु दीर्घम् "नैरन्तर्यं सत्य कर्य सेवितो दृढ़भूमिः" (योग दर्शन समाधि पाद) मूढ, क्षिप्त, :विक्षिप्त, एकाग्र और निरुद्ध

-*- तद्विज्ञानार्थं स्वं गुरुमेवाभिगच्छेत्समित्पाणि श्रोत्रियम् ब्रह्म निष्ठम्-मुण्डक द्वि० ख० नाययात्मा-प्रवचनेन लभ्य तृतीक मुण्डक द्वि० खण्ड। अभ्यास वैरा- ग्यांभ्यां तन्निरोधः (योग साधन पाद।)

वृत्तियों में अन्त की दो वृत्तियाँ ही अभिप्रेत है। इन का उदय तभी होगा जब तप, स्वाध्याय, ईश्वर प्रणिधानादि क्रिया योग द्वारा अविद्या जन्य अस्मिता आदि क्लेशों के संस्कार दग्ध कर दिये जाये। इसके लिये श्वेताश्वतर उपानिषद् के द्वितीयाध्यायगत आठवे मन्त्र ✱ के अनुसार "उर स्थूलग्रीवा और शिरो भाग' इन तीनों को शरीर के सहित ऊँचा और सीधा साधकर हृदय में इन्द्रिया के व्यापार को संकल्प बलसे रोक कर विद्वान् योगी पर-ब्रह्म परमात्म देव के स्मरण की डोंगी में बैठकर स्वदेह महोदधि के भीषण स्रोतों को पार करे।

गोपथ ब्राह्मण के अनुसार "मनसि प्राणान्सन्दधीत" हृदय में प्राणों को संकल्प बल से रोक कर अर्थात् श्वाँस लेते समय ओ३म् के ओकार से तथा प्रश्वास (श्वास छोड़ते समय) ओ३म् के मकार से जप करते हुए एकाग्र अवस्था को प्राप्त करें और शनै: शनै: ध्यान मग्न हो जायें।

ज्यों ज्यों प्रभु स्मरण के साथ एकाग्रता बढ़ती जायेगी और अन्नमय, प्राणयय, मनोमय, विज्ञानमय तथा आनन्दमय कोश में प्रवेश होता जायेना, त्यों त्यों योग क्रिया की सफलता भी प्राप्त होती जायेगी तथा सांसारिक वृत्तियों से छुटकारा और प्रभु के सान्निध्य का उत्साह बढ़ता जायेगा एक बार जहाँ इस मार्ग पर

....

-✱- त्रिरुन्नतं स्थाप्य समं शरीरमित्यादि श्वेताश्वतर द्वितीया
ध्याय: ।

चलने का चाव बढ़ा कि फिर कल्याण की परम्पराओं का द्वार खुलता ही जायेगा।

कल्याण के मार्ग पर चल देने पर फिर भय का कोई स्थान नहीं। भयानक और मलिन संस्कारों का धुआँ धुलना आरम्भ हो जायेगा, शुक्ल संस्कारों का रूप निखरने लगेगा, ऋतम्भरा प्रज्ञा का उदय हो कर व्युत्थान के संस्कारों की अन्त्येष्टि होने लगेगी। पर वैराग्य द्वारा उस ऋतम्भरा प्रज्ञा जन्य संस्कारों के विरुद्ध हो जाने पर पुरातन तथा नूतन संस्कार भी विरुद्ध हो जायेंगे। तथा निर्बीज समाधि सिद्ध हो जायेगी।

१८- नारीत्व का हनन

और महर्षि दयानन्द

विश्व का समस्त नारीत्व जब कराह रहा था, मानव का कुत्सित हृदय तब उसे खरोंच कर उसके खून की होली मना रहा था, उसके बालों के सिन्दूर को उसी की रक्तधारा में मिला कर उसी का सिर रंग रहा था, उसे बलात् वार्धक्य का साधक, मनोरंजन का व्यंजन बनाकर अठखेलियाँ कर रहा था, अपनी विषय वासना का सर्वस्व समझकर उसके जीवन का सर्वस्व यौवन की कोठरी से निकाल कर बलात् लूट रहा था। उसके सतीत्व पर डाका डाल कर उसके चीत्कार पर उसे डायन की संज्ञा दे रहा था। अपने जीवन के बुझते दीपक को उसी की वासना का तैल डालकर भी जब वह भोग की आँधी के कारण स्वयं ही बुझ जाता था तब उसे समस्त परिवार को चाट जाने वाली राक्षसी कहा जाता था।

अतः वैधव्य का धब्बा तो लगता था विधवा के विधुत धरातल पर, और उसे धोने के लिये अन्धे ध्यान का दोष भी चिपटता था। उसी अर्धाङ्गिनी के निरपराध अंगों को।

जिस प्रकार नारीत्व का साम्राज्य मातृत्व की राजधानी में आराधनीय था उसी प्रकार उसके विरोध की धारा में भी इतनी बाढ़ थी कि वह बन-बन कर ढहती ही रहती थी।

साधना के सोपान पर चढ़कर ओंकार ध्वनि का अधिकार तो उपेक्षा की आंखों में आंसू भर-भर कर सिसकता ही था साथ ही साथ विचारा उच्च चिन्तन का प्रहरी पुनीत मन्त्र जाप भी नारी से स्पृष्ट होते ही हतप्रभ हो जाता था। "स्त्री शूद्रौनाधीयताम्" का उद्घोष खुलकर खिलवाड़ करने के लिये पूर्ण स्वतन्त्र हो चुका था। नारी जाति के अज्ञान का अन्धापन तो तब दूर होता जब उसकी मन्ददृष्टि की चिकित्सार्थं ज्ञानाञ्जन का प्रयोग किया जाता।

नारी का सुधार न जाने कितने भावुक जनों के चरण चुम्बन कर चुका था किन्तु कोई भी कुशल नेतृत्व सफल नहीं हो पाता था। नारी जाति का असहाय असहयोग हा-हाकार कर रहा था।

उसी वीभत्स दृश्य को सहन न करने वाला नारी सौहार्द्र अपनी तपोनिष्ठ वृत्ति में महर्षि दयानन्द के दयार्द्र हृदय को गुद-गुदा रहा था जिसे महर्षि सहन नहीं कर पा रहे थे।

एक ओर नारी चक्र का विपरीत चक्रमण विचक्षणों की भी चाक्षुष शक्ति को चुंधिया रहा था, दूसरी ओर आर्य जाति की वैभव शालिनी उक्त पीढी की परम्परा का भविष्य घोर अन्धकार के महासागर की तलहटी में सर्वदा के लिये बठा जा रहा था।

अनन्त शक्तियों का पुञ्ज अनन्त साधनों का निकुञ्जन होने पर भी महर्षि का उत्साह पाखण्ड खण्डिनी पताका की डोंगी

में बैठकर खण्डन मण्डन के चप्पुओ से ही अन्धविश्वास के सागर को चीर कर आगे बढ़ने लगा।

यद्यपि बाधाओं की ह्वेल मछलियों ने डोंगी को निगलना चाहा। विरोधी विचारो की बीचियों ने उसे उछल-उछल कर डुबाना चाहा, संकट के घोर उपद्रवों ने उसके टुकड़े-टुकड़े करने में कोई भी कसर नही छोड़ी

परन्तु वह तो तप और ब्रह्मचर्य की लोहमयी चादर से चारो ओर सुरक्षित थी, डोंगी बढी जा रही थी महर्षि का उत्साह तो डिगने वाला था ही नही।

अन्धविश्वास का समुद्र अपार था। नारी अत्याचार के चुभने वाले कण्टकों से इतनी क्षत विक्षत थी कि बड़े-बड़े वेदना मर्दन के सक्षम हाथ भी अपने को उस क्षण अक्षम पा रहे थे। नारी का नारीत्व सागर की लहरियो पर तीव्रता के साथ जैसे-जैसे झटके खाकर अपनी शक्ति खो रहा था उसे डुबाने वाली निडर मानव मानस की वृत्तियां पनप कर उसके ऊपर पूरा प्रहार करने में भला क्यों चूक सकती थी। अबोध बालाओं का वृद्ध पतियो के साथ किया गया बलात् गठबन्धन भारतीय संस्कृति पर तो विश्व वास्तविक श्रद्धा को विरक्त कर ही रहा था साथ ही भारतीयता के वैभव को भी पराभूत किये जा रहा था। अन्धविश्वास के इस महासागर में ज्वार भाटे आ रहे थे उन से सदाचार की सीमाये तो

समाप्त हो रही थी साथ ही पारस्परिक सौहार्द के उत्तुङ्ग प्रासाद भी धराशायी हुए जा रहे थे। वर्ण शंकरता परिणत हो रही थी।

जनक विहीन जननियों से आजीविका मात्र भी धन, उद्धत और अपराधी हृदयों द्वारा मृतक श्राद्ध की आराधना में धौम पट्टी से ठगा जा रहा था। वासनाग्नि की चिता ही नहीअपितु अन्त्येष्टि की चिताग्नि में भी जीवित नारीत्व को झोंक कर उसके सतीत्व से होली खेली जा रही थी।

दहेज का दान व दशोदिशाओ में अपनी दुर्दान्त उद्दण्डताओं से न जाने कितनी निर्दोष देवियों के नन्दन वनों को दौड़-दौड़ कर ध्वस्त कर रहा था।

उस समय के शस्त्र भी इतने कठोर हो चुके थे कि वे पुनर्विवाह के क्षेत्र मे विधवाओं का तो विरोध करते थे किन्तु विधुरों के विरोध में उनकी मुंह न जाने कौन सी जाता था।

पूर्ण सती साध्वी भी केवल यवन के आकस्मिक स्पर्श मात्र से पतिता हो जाती थी।

उसे अवगुण्ठन की काल कोठरी में विना किसी अपराध और बिना किसी अभियोग के यावज्जीवन रहना पड़ता था।

विशुद्ध वायु मण्डल में विहार की इच्छा उसके नैतिक जीवन के लिये पूर्णतया वर्जित थी। अन्धविश्वास के गहरे और उपद्रव ग्रस्त सागर पर नारीत्व अपने साँसों की अन्तिम घड़ियाँ गिन रहा था।

महर्षि का महान् उत्साह नारीत्व की रक्षा के लिये प्रतिक्षण भूझ रहा था किन्तु अभी तक भी लक्ष्य दूर था। डोंगी वेग से सागर की छाती चीरती हुई दौड़ रही थी तथापि मार्ग बड़ा लम्बा था। नारीत्व के संहार के लिये तात्कालिक सामाजिक कुरीतियों का जाल इतना अधिक घना था कि उसके एक एक पाश को तोड़े बिना रक्षा असम्भव थी। जो भी कोई आगे बढ़ने के लिये महर्षि को सहयोग देता था उसे जातीयता से बहिष्कृत होने का दण्ड मिलता था। नारीत्व को पैरो की जूतियाँ बनाकर भी समाज को सन्तोष नही था। प्रतिदिन कोई न कोई नवीन ऐसी प्रथा को जन्म दिया जा रहा था। जो भविष्य में भी उसे उठने न दे, पनपने न दे और साथ ही विनाश की लीला से बचने न दे। उसे विधर्मियो को सौंपा जा रहा था, उसकी सन्तानों को अनाथ बना-बनाकर कही बेचा जा रहा था, कही गुलाम बनाने की प्रथामें धकेला जा रहा था और कही विधर्मियों की पाशविक इच्छा पूर्ति के लिये असहाय किया जा रहा था

"यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते" का महावाक्य चिंघाड़ चिंघाड़ कर चिल्ला रहा था कि भारतीयता से खिलवाड़ करने वालो कुछ तो सोचो

अपने ही अर्धाङ्ग की निर्दयता पूर्वक दुर्गति करने से धर्म नही बचेगा अपितु जड़मूल से बचा खुचा भी ध्वस्त हो जायेगा। परन्तु सुनता कौन था, अतः महर्षि ने अपनी डोंगी से कुतर्कों के किले में बैठे हुए कायरो पर युक्तियों प्रमाणो से पैने किये गये वाद विवाद के रण प्राङ्गणों में ऐसी वाग्वाणों की वर्षा की कि उसकी भीषणता से भयंभीत होकर प्रतिपक्ष तिलमिला उठा। इस वाग्युद्ध में प्रतिपक्ष ने ईटो पत्थरो की वर्षा छिपकर प्राणाघात करने के ओछें उपायों और विश्वासघात की प्याली भर कर महर्षि को पान कराने के शतशः उपाय किये किन्तु वह महारथी अकेला ही जूझता रहा और जब तक उसने नारीत्व की रक्षा ही नही अपितु उसके अभ्यु-त्थान का भी क्षेत्र परिष्कृत न ही कर दिया तब तक वह संघर्ष के प्राङ्गण मे भी अविचल गति से अड़ा रहा।

महर्षि द्वारा आर्यसमाज की स्थापना की मुस्कराहट-ब्याज दृष्टव्य है। १०० वर्षों के लम्बे समय में आज जिस स्त्रीजाति को शिक्षित बनाकर कार्य क्षेत्र के विस्तृत प्रांगणों में विविध योग्यताओं का हार पहना कर जिस प्रकार पूजित कराया है उसेकोई भी उपेक्षा की बहती हुई नहर में डुबा नहीं सकता। वे दिन आज लज्जित होकर मौन मुद्रा में अतीत की ओट का कोट पहन कर न जाने कहाँ छिप गये है जब आर्य समाज की कन्या पाठशाला

का आरम्भ उन्हे धर्म समारम्भ के विध्वंस मे प्रध्वंसाभाव का प्रभाव जंच रहा था ।

आज आर्य समाज को यह गर्व है- उसनें हिन्दू जाति की असंख्यात कुप्रथाओं को जिस प्रकार यहाँ से गल हस्तिका देकर देश निकाला दे दिया, उसी प्रकार स्त्रीजाति की अशिक्षा का राक्षसी ताड़का के समान वध भी कर दिया है ।

१९- आः महर्षि-निर्वाण

आः ३१ अक्टूबर सन् १८८३ का ६ बजे का समय भी कैसा निर्मम था जिसने विश्व की विभूति और आर्य जनों के प्राण-भूत मूर्त महर्षि को सर्वदा के लिये छीन लिया। भारत के सौभाग्य ने अपने प्रभूत प्रभाव को जिस भव्यता के समुन्नत शिखर पर पहुँचाया था न जाने क्यों उसका औचित्य इस कलीकाल को फूटी आँख भी नही सुहाया।

आर्य जनों का अविलम्ब अवलम्ब निरवलम्ब हो गया। आर्यों का आराध्य देव अनन्त समाधि-साधन की अधीनता में आबद्ध हो गया। सहृदयों के अन्त र्हृदय का हर्ष उस दुष्ट वर्ष की बलिचढ़ गया। आर्य विचारो का प्रचार चिन्ता की चिता पर लेट गया। वेद भाष्य नैराश्य की आसन्दिका पर आसीन हो गया। सत्या-सत्य के अन्वेषण का भूषण न जाने किधर खो गया। विधाता का क्रूर कटाक्ष अपनी कक्षा से निकल कर आर्यत्व की रक्षा के पक्षपर ही टूट पड़ा। कोटि-कोटि जनता की भावनाओ का केन्द्र बिन्दु अदृश्य हो गया। ब्रह्मचर्य व्रत का अनवरत सर्वोच्च आदर्श केवल स्मृति के श्याम पट्ट पर ही अङ्कित रहने के लिये एकाकी पड़ गया। आर्ष ग्रन्थों का उद्धार हार खाने के लिये खुला छाड़ दिया गया। ऋषि मुनियों की परम्पराओं का खुलता हुआ द्वार दुर्दैव के एक ही वार से ध्वस्त हो गया। वैदिक विज्ञान का सूर्य उदय होने से पूर्व ही राहू ग्रस्त हो गया। एक ओर भारतीय संस्कृति की आँखों में

आँसू छलक आये तो दूसरी ओर भारतीय सभ्यता का गला ही रुंध गया। विधवाओं का करुण क्रन्दन जिसका वन्दन करता था, अनाथों का चीत्कार जिसके सौहार्द का अभिनन्दन करता था, गोरक्षा का आन्दोलन जिस की अन्तः अनुकम्पा का पुनीत पर्व था और गुरुकुलीय शिक्षा का अक्षीण कोष ही जिस का सर्वस्व था अा: वह मङ्गलात्मक अभ्युदय भी विधाता को सहन न हुआ।

आर्य भाषा की महत्त्व पूर्ण परिभाषा जिस आशा का दीप प्रदीप्त करके लाई थी दीपावली ने उसे महाबली छली काल की निराली गति को सौंप दिया। स्वराज्य का प्राज्ञ विज्ञान जब नैतिक साहस की हीनता के कारण अपने दुर्दैव के निवारण की भिक्षा माँग रहा था उसकी झोंली में उलझी समझ बूझ की गुत्थी सुलझाने वाला, जैसे ही कुछ डालने को हुआ कि हा! हत हृदय समय के चक्र ने अपनी कुचाल चलाने में स्वल्प भी सङ्कोच नही खाया स्वदेश का वह भव्य प्रदेश, सदाचार, सद्विचार सद्भाव का साक्षात् स्वभाव, सुरीतियों सुनीतियों का महान् उन्नायक, कुप्रथाओं दलित दीनों की व्यथाओं का उन्मन्थक, सहिष्णुता प्रभविष्णुता जिष्णुता का निष्णात विष्णु न जाने किधर अन्तर्ध्यान हो गया। न जाने कितने युगो के अनन्तर ब्रह्मचर्य व्रत को एक अखण्ड व्रती मिला था जिसने हनुमान, भीष्म, बुद्ध, आदि महान् मनस्वियो के महत्त्व से भी ऊपर उठकर हठात् कठोर और अकुण्ठित आदर्श को प्रतिष्ठित किया किन्तु कर्कश और जिस किसी के भी प्राणाकर्षक उद्धत विधाता को इससे क्या प्रयोजन ??

कुमार्ग के मानव मृग वाममार्गी जब वाममार्ग के प्रसार का जटिल पाश लेकर समस्त जन समुदाय को विभ्रान्त करने का षड्यन्त्र रच रहे थे उनके कुचक्र को चकना चूर करने वाला एक सर्वोच्च विचारक आः देखते-२ ही छीन लिया गया। हिन्दुत्व के ह्रास को जब सहिष्णुता की सीढ़ी से उतार कर आर्तनाद करने के लिये उकसाया गया तो मूर्खता की प्रतिक्रिया का प्रतिनिधित्व भी देखिये कैसी बिडम्बना थी। पाखण्ड खण्डिनी पताका का पता जिस प्रकार कानो कान फैल रहा था। उसका अन्तिम फल बिफल करने के लिये ही सम्भवतः पक्षपाती काल ने फाँसी का फन्दा फेका होगा। अद्वैतवाद का विवाद त्रैतवाद से भिड़ कर अवतार वाद का मण्डन अवतार वाद के खण्डन से खण्डशः होकर निरीश्वरवाद का प्रसार सेश्वर वाद से निरस्त होकर जब अन्तिम घड़ियाँ गिन रहा था उसी सयय दैव के अनभ्रवज्रपात ने अपना अट्टहास सुनाने की ठान ली जड़ पूजा, जड़विश्वास और जड़ सिद्धान्तो का अध्याय जब सर्व साधारण की जड़ बुद्धि के पृष्ठो पर बढता ही चला जा रहा था तब एक ही धीर- धी सुधी सुबोध साधना का चित्र खीच रहा था जिसका कि अकथनीय कौशल भी भी सनकी काल को नही सुहाया । आः दैव ! तुम्हे भूठ कर्म काण्डियो के द्वारा यज्ञों में पशु बलि स्वीकार करना तो भाता रहा किन्तु जीव मात्र के परम हितैषी याज्ञिक की अहिंसक यज्ञ प्रक्रिया पर भौहे तानने का ताव चढ़ गया ? आः विधातः जैन, बौद्ध, चार्वाक, पौराणिक, ईसाई यवन आदियों की विभ्रान्त साम्प्रदायिक पद्धतियाँ तो तुम्हारे गले उतरती रही ? किन्तु वेदोदित सार्व भौमाभिराम सिद्धान्त सिद्धियाँ तुम्हारे धवल ध्येय की आराधना में

साधना का काम न दे पाई ?? आः विश्व नियति के निर्णायक विश्व को अनार्यत्व की सृष्टि में बसाने वाले, अपनी अनीतियों अनैतिकताओं और और अनर्थों में फूलते फलते रहे और आर्यत्व को आप्रलय अमर बनाने का अवसर ढूंढने वाले मृत्यु की विमूढता पर ढकेल दिये जाये ? सामान्य जनता के निर्भय प्रवञ्चक ज्योतिर्विदा भासों की आशाओं पर तुषारपात करने के लिये उस शूर सेनानी का शिशिर काल बन कर आना भी क्या कोई अपराध था सहशिक्षा की दीक्षा देने वाले पण्डितम्मन्यो की मनमानी पर गति अवरोध का अंकुश लगाना भी क्या कोई अकार्य था ?? गुरुकुलीय पद्धति द्वारा गुरुशिष्य परम्परा की पुनीत प्रवृत्ति का उद्धार करना भी क्या कोई भीषण षड्यन्त्र था ?? स्त्री जाति की अशिक्षा के कुलक्ष्य पर अक्षीण प्रहार करना भी क्या आक्रान्ता की कोटि में गिना जायेगा ?? ओ विधाता कुछ तो बताओं ! क्या तुम्हारा यह अभिप्राय है कि मानव मात्र को मानवता का अधिकार दिलाने वाली वरा की वर्ण व्यवस्था सिसकती ही रहती ? प्राणी मात्र का परम पावन परम प्रभु का परम पुनीत वेद ज्ञान जड़ पुस्तको के जड पन्नो पर ही पड़ा पड़ा-पड़ा सड़ता रहता ?? ऊँचनीचता के भेदभाव को को भुलाने वाली भारतीयता अपने भाग्य को कोसती ही रहती ?? धर्म के नाम पर धर्म की धज्जिया उडाने वाली धर्माभास धर्म दम्भियो की अधीर धारणाये उस धरा धाम पर पूर्ण विश्राम करती ?? बाल विवाह और वृद्ध विवाह को अविहित विधि अविरत अमूल्य जीवनो से खिलवाड़ करने के लिये छोड दी जाती ?? सच बताओ क्या तुमने उस समय की अराजकता की

स्वच्छन्दता को अपनी छत्रछाया देकर मानव जीवन की शान्ति के साथ अन्याय नही किया ?? और थोडा उधर भी देखिये बिचारी आश्रम व्यवस्था ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और सन्यास के उज्ज्वल स्वरुप को सजाने के लिये हाथो मे प्रसाधन लिये-लिये ही आंसू बहा रही है। आर्य संस्कारो की शुद्ध सरणि कीट दष्ट अरणी के समान प्रकाश दिखाने में हतप्रभ हो रही है। आर्य जाति के जीवन में घुन के समान लगे व्यसनो को दो-दो हाथ दिखाने की क्षमता मुंह छिपाकर आत्महत्या करने पर उतारु हो रही है। आर्य राज्य का स्वप्न मौन होकर अपने महत्त्व के अहङ्कार पर पश्चात्ताप करने की सोच रहा है। यदि इतने पर भी हे देव ! तुम्हे सन्तोष नही तो क्या उन दिनो के देखने के लिये फिर छाती पर पत्थर रखना पड़ेगा जब ब्रह्मा विष्णु महेश इन्द्र और विश्वामित्र तथा श्री कृष्ण आदि मनस्वी महात्माओ को चारित्रिक लाञ्छन लगा कर उसके पीछे पाशविक इच्छा पूर्ति का उपक्रम प्रयुक्त करते हुए लक्षो होनहार युवतियो तथा कुल क्रम से प्राप्त कुलीन कुलो से संकुल समाज व्यवस्थाओं को आमूल विच्छिन्न कर देने का कमाल किया गया और क्या फिर वही युग आना चाहिये जब वेदो मे महीधर आदि भाष्यकारो द्वारा सपत्नीक यजमान को यज्ञशाला में आकर पशु अश्वके माध्यम से प्रजननार्थं निर्लज्जता को भी तिलाञ्जलि दिलाने का विधान प्रस्तुत किया गया था ?? और क्या फिर वही अन्धकार छा जाना चाहिये जब गौतम पत्नी अहिल्या से इन्द्र के बलात्कार की पौराणिक गाथा को मन्त्रार्थ की निष्पत्ति से जोड दिया गया था और क्या अभ्युदय और निःश्रेयस की सिद्धि साधने वाला धर्म फिर उसी

अज्ञान कूपके कुहरमे धकेल दिया जाना चाहिये। जहां तू ब्रह्म और मैं ब्रह्म का नारा लगा कर उद्दाम वासनाओं की दिशा में कामातुरता के नाटक खेले जाये ? क्या फिर अपनी पुनीत संस्कृति अपना अपनत्व त्यागकर धूर्त भाण्ड और निशाचरो की पैशाचिक प्रवृत्ति का कोश बन जाये तब हे प्रगति युग के प्रतिस्पर्धिन् विधे ! अहिंसा को साहस प्रदान करने वाला, सत्य को सान्त्वना देने का प्रतीक अस्तेय को स्वस्ति कहने वाला ब्रह्मचर्यव्रत को अविरत समृद्धि देने का धनी अपरिग्रहको विग्रह से बचाने वाला शौचाचार के प्रचार में विचक्षण, सन्तोष सन्ततिका सन्तत विस्तारक तपो दीक्षाका अक्षीण शिक्षक वैदिक स्वाध्याय का आराध्य देवता और ईश्वर प्रणिधान का वास्तविक सन्निधान बताओ किधर भेज दिया है ??

आः सत्य सिद्धान्तो के आधार ! यह धरा अब अधरा हुई जा रही है वह देखो तुम्हारे पाद पद्मो से ठुकराई गई उदयपुर राज्य की गद्दी आज भी तुम्हारे अद्भुत त्याग की मूक भाषा मे ही गाथा गा रही है। अपने विषदाता को भी कैद से छुडाने की भावनाभिव्यक्ति से उद्भूत तुम्हारी शिलोच्चय के समान अविचल सहिष्णुता को देख कर ऐसा प्रतीत होता है कि रोमाञ्चों से वञ्चित बिचारा शेष नाग केवल अपनी उज्ज्वल फणा मणियों की श्रेणी से आरती उतारने तक ही सीमित रह गया है। काँच पिलाने वाले को भी आँच न आने देने के लिये अशर्फियों की थैली देने वाले !! प्रभु

तेरी इच्छापूर्ण हो कहकर मृत्यु को भी आशीर्वाद देने वाले !! अद्भुत स्वरुप !! नयनाभिराम तुम्हे शत-शत प्रणाम है। निर्भय आचरण के आचार्य ! इस अकिञ्चनका अश्रुविमिश्रित चरण स्पर्श स्वीकार हो। अस्खलित तपो व्रत के निकुञ्ज ! वैदिक आदर्शो के पुज्ज! यह मनो गुञ्जित तुम्हारी यशः प्रशस्तिगान की झंकृति अनहंकृति के ध्वनियन्त्र (रेडियो)से रिस-रिस कर सर्वदा प्रसारित होती रहें। ऐसा वरदान दे दो।

दीपावली की प्रदीप्त दीपमाला को अपनी उज्ज्वल ज्योति देकर गीर्वाण गीर्गुणागणार्जित निर्वाण की महिमा का प्रभुत्व बढाने का तुम्हारा उद्देश्य विश्व को सुमार्ग दिखाता रहे यह हमारी आकाँक्षा क्षीण न होनी चाहिये।

२०-- दिव्य - दर्शनानन्द

ओ३म् स्वस्तये वायुमुप ब्रवामहै सोमं स्वस्ति भुवनस्य यस्पतिः ।
बृहस्पतिं सर्वं गणं स्वस्तये स्वस्तय आदित्यासो भवन्तु नः ।।

आर्यं संस्कृति को महीनों नहीं वर्षो नही अपितु युगो तक कठिन तपस्या करने के पश्चात् अपना सुहाग मिला था । वह वैदिक सभ्यता के माथे का तिलक था । भारतीयता के सुभग शृङ्गार का सिन्दूर था शास्त्रीय गहन विचार चर्चाओं का आल्हादक निस्तन्द्र चन्द्र था । त्याग वृत्ति का वह नायकथा । निर्धन छात्रों की परिपालन प्रवृत्ति का प्रउन्नायक था । कहा जाता है कि अपनी आजीविका की कुछ पून्जी उपलब्ध होने पर बनारस में किसी समय उन्होंने एक प्रेस खोला था जिसमें काशी का अष्टाध्यायी महाभाष्य आदि संस्कृत पुस्तके छपती थीं । वह उन पुस्तकों को संस्कृत पढ़ने वाले छात्रों को निर्धन देखकर उनकी दशा पर द्रवित होकर निश्शुल्क ही दे दिया करते थे । छात्रों को भोजन देने के लिये एक सदाबर्त्त का प्रबन्ध रखते थे । हितैषियों के द्वारा आर्थिक परिस्थिति को दृढ़ रखने की सलाह सुनकर भी अपने ऊपर खेल जाते थे । आर्थिक कष्टों की परम्परा स्वयं झेल जाते थे परन्तु अपने संस्कृताध्ययन प्रेमी छात्रों के अध्ययन प्रवृत्ति की वाधा पुस्तकाभाव को सहन नहीं कर पाते थे । दूसरो के सुखों से सुखी और दूसरों के दुःख से दुःखी होना आपको ही आता था ।

"यस्तु सर्वाणि भूतान्यात्मैव भूद् विजानतः तत्र को मोहः कः शोकः एकत्वमनुपश्यतः ।। "

अर्थात् जो विश्व की समस्त आत्माओं को अपनी आत्मा में ही समाया हुआ जानता है उसे एकत्व की भावना मे ओत प्रोत हुए कहाँ मोह रहा और कहाँ शोक रहा ??

सचमुच इसी श्रुति के आप प्रतिरुप थे सांसारिक स्वभाव दूसरों के द्रव्य का आदान और अपने संकटो का निकट वर्तियों को प्रदान करना कोई संकोच नही मानता, किन्तु मानवता के माहात्म्य का पारदर्शी विद्धान् यह यति इससे प्रतीप ही प्रवृत्ति का था। वह अपनो विपुल सम्पत्ति को दूसरो की विपत्ति दूर करने का साधन मात्र समझते थे, और अपने कारण होने वाली कष्ट सृष्टि की स्वल्प वृष्टि भी दूसरो तक पहुंच जाना अब्रह्मण्यं जानते थे। वैभव का विलास इनसे परिहास करने की क्षमता नही रखता था। तपो-वृत्ति का आँचल उन्होंने निस्संकोच होकर पकड़ा हुआ था। ऐसा दीखता था जैसे तपस्विता ने संतप्त होकर स्वात्मीयता की दुर्दशा देख कर ही दूसरों से नाता तोड़ कर बहुत सोच-विचार के पश्चात् इस चिर तपस्वी का पाणि-ग्रहण किया था। केवल वस्त्र खण्ड का अनसिला एक टुकड़ा पीठ पर और दूसरा शरीर के अधो भाग पर लटकता रहता था। अपने भोजन का भूरि भाग वे अभागे दीन हीनों को खिला देना ही स्वान्त सुख समझते थे। दूसरो के कष्ट निवारण

का कारण आ पड़ने पर संकोच धारण उनके लिये कभी भी उदाहरण बनकर प्रस्तुत नही हो पाया विद्यानुराग और संस्कृत भाषा का प्रसार उनकी नस-नस में स्फूर्ति के लिये कटिबद्ध रहता था। स्थान-स्थान पर पाठशालाओं को जन्म देना (और) गुरुकुलों की परिपाटी का प्रचार करना उनका दैनिक विचार चर्चा और दैनिक आचरण अर्चा का अङ्ग था। उन से अपने पुनीत जन्म का सौभाग्य लाभ लेने वाली सैकडों अध्ययनशालायें आज भी भारत के सुदूर भू भागों में दी जा सकती है॥ महर्षि दयानन्द के द्वारा वैदिक धर्म के प्रचार की जो प्राण प्रतिष्ठा आर्य जनों के हृदय प्रदेश में अधि-ष्ठित हुई थी उसे सुरक्षित तथा प्रसारित करने के लिये वे अहर्निश जागरूक रहते थे। जब भी कही वैदिक धर्म प्रचारार्थ आवश्यकता पड़ती थी आप परिश्रान्त होने पर भी दसियों मीलों की दूरी पद यात्रा मात्र से माप लेते थे। मार्ग जन्य शीत या उष्ण ऋतु का प्रभाव, पिपासा या क्षुधा, अशान्ति या परिश्रान्ति आप पर स्वल्प मात्र भी आतङ्क पैदा करने की क्षमता नही रखती थी। समाजों में पहुंचते ही आप विश्रामार्थ शय्या का प्रस्ताव नही करते थे अपितु प्रतिद्वन्द्वी या किसी प्रतिपन्थी के द्वारा समुत्पादित अतर्कितोपनत विघ्न बाधा के निवारण का समुचित और रूचिकर उपाय ही सोचते थे। आपके भव्य भाषणों के प्रभाव कुटिल श्रोताओ के अटल स्वभाव भी पल भर में परिवर्तित कर देते थे। भाषण शैली का लालित्य पाण्डित्य पूर्ण पुट लिये हुए विकट पण्डित मण्डल को भी झुकाने में सिद्धिप्राप्त किये हुए था। कठिन से कठिन तरभी विषय

पर सुरुचि पूर्ण लेख लिख देना आपकी अपनी कला थी। प्रतिदिन प्रचलित बिषय पर वैदिक धर्म के सिद्धान्तानुसार युक्ति और प्रमाणो से समन्वित एक ट्रेक्ट तो लिख देना आपकी दैनिक दिन चर्या ही थी। दर्शन शास्त्र के आप दिग्गज विद्वान् थे, उपनिषदों के तात्त्विक रहस्य आपकी विचार चर्चाओं में सर्वत्र प्रतिबिम्बित पायेंगे। अनेकानेक पुस्तकों पर आपकी पाण्डित्य पूर्ण मननात्मक टीकाये तथा प्रभावात्मक भाष्य विद्वज्जनों के लिये अभिनन्दनीय निधि रुप हैं। आप जहाँ वाग्मी थे अतुल तार्किक तुमुल प्रतिपक्षी की तर्कतति के निकृन्तन मेकृती भी थे। बड़े से बड़े शास्त्रार्थ महारथी के हथकण्डो को सैकेण्डो मे उड़ा देना आपके लिये क्रीड़ा मात्र था। श्रोतृ समवाय जब दुर्दान्त दृप्त विद्वान् की विद्वत्ता से दो-दो हाथ करने वाले आपके प्रकाण्ड पाण्डित्य का अखण्ड ताण्डव देखता था, दाँतो तले ऊँगली दबालेता था। प्रति पक्षी की युक्ति प्रत्युक्तियों को सुनकर जेसे ही श्रोतृ वृन्द को प्रस्तुत विषय मण्डन के लिये निराशा का कुहरा ढकने की मूढ़ता आरम्भ करता था कि अपने प्रत्युत्तर के पर्याय में तत्काल आपका अपरिमित प्रौढ़ बाढ़ की तरह बढ़ने वाला गूढ़ निदिध्यासन उसके वाग्जाल के निरसन के लिये ऐसा तीक्ष्ण आक्रमण करता था कि प्रतिपन्थी की युक्तियों के टुकड़े-टुकड़े होकर बिखर जाते थे और साथ ही प्रत्याक्रमणात्मक तर्क आपके अतर्क तरकस से निकल कर ऐसे बरस पढ़ते थे कि उसकी आहट से ही उसे पसीने आने लगते थे। आपके अपरिमित प्रमाणों की जब झड़ी लग जाती थी बड़ी-बड़ी जाति के विज्ञ जन

भी आपकी स्मृति के ओज से निरोज हो जाते थे और आर्य जनों के मुख सरोज विकसित हो उठते थे। "यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः। तत्रश्री विजयो नित्यं ध्रुव नीतिरियं ममेति" ॥

का वाग्दान शास्त्रार्थ में आपकी ओर से आपके होते हुए वैदिक सिद्धान्तों की विजय को मिला हुआ था। आश्चर्य का विषय तो यह था कि आज विविध मत खण्डनार्थ जहाँ हमें विविध सिद्धान्त मर्मज्ञों की सैकड़ों की संख्याओ में आवश्यकता का अनुभव होता है वहाँ आप विविध मतानुयायियों के सिद्धान्तों का निर्णायक खण्डन अकेले ही करने में पर्याप्त थे। आपके रङ्गभूमि में उतरते ही यवन मत का मतवाला उग्रउन्माद शिशिर लहर से कटकटाते दाँतो के समान असीम होता हुआ भी ब्रिटिश राज्य के पागल खानो में कोड़े खाने वाले पागलो की उन्मृष्ट दुष्टता की तरह तत्काल खण्डित हो जाता था। ईसाइयों की युक्ति प्रत्युक्तियाँ आप की तर्कश विचार चातुरी के सम्मुख होते ही ऐसी विमुख हो जाती थी जैसे भगवान् शङ्कर के प्रलयङ्कर तृतीय नेत्र की आग्नेय रश्मियों के आगे कामदेव के कामवाणों की चिनगारियाँ। जैन बौद्ध यहूदी और पौराणिक पन्थ के बड़े-बड़े वाग्धनुर्धर आपकी प्रबुद्ध वाग्धारा की वृष्टि से ऐसे छिन्न-भिन्न हो जाते थे जैसे वर्षा कालकी अविकल सलिल धारा की वर्षा आरम्भ होते ही मेघो में जन्म लेने वाले इन्द्रधनुष। आपके रहते वैदिक सिद्धान्त इस प्रकार निर्भय और असन्दिग्ध रहते थे जैसे भास्कर के रहते दिवस व्यापार परम्परा के प्रवर्तन।

इतने पर भी आपके अखर्व गर्व ने प्रतिद्वन्द्वियों को तिरस्कृत करने का कभी भी पर्व नही मनाया। तीक्ष्ण कटूक्तियों की झड़ी लगाने पर भी आप व्यङ्गलोकोक्तियों का प्रयोग नही करते थे।

आपके महान् माहात्म्य को देखकर विद्वेष करने वाले दम्भियों की दम्भोलि मोमांसा आपके मांसल गाम्भीर्य को बिन्दु मात्र भी विचलित नही कर पाती थी। किसी में ताव नही था कि कोई शास्त्रार्थ की वेदी से ललकार तो सके क्यों कि:--

समद करि कुम्भ दारण मद पङ्कच्छुरित केसर सटस्य।
सिंहस्य कइव वक्तृ करतलमाधातुमुत्स हते॥

वे कभी भी छोटे मोटे प्रतिद्वन्द्वी से नहीं भिड़ते थे। रोगशय्या पर लेटे हुए कई दिनों की क्षुत्क्षाम कण्ठता के उपकण्ठ होने पर भी अकुण्ठित बुद्धि वाले की हठवादिता को देखते ही कूद पड़ते थे। किसी ने ठीक ही कहा है कि:–

क्षुत्क्षामोऽपि जरा कृशोऽपि शिथिल प्रायोऽपि कष्टाँ दशा,
मापन्नोऽपि विपन्न धो धृतिरपि नश्यत्सु प्राणेष्वपि।
दर्पाध्मात करीन्द्र कुम्भदलन प्रेंक्स्वन्नखाग्राशर्न्,
किं जीर्णं तृणमात्ति मान महतामग्रेसर: केसरी॥

पुत्रैषणा वित्तैषणा लोकैषणा का त्रित्व भी मिलकर अकेले भी आपको जब आकृष्ट करने में सामर्थ्य न पासका तब वह दिव्य-दर्शनानन्द को छोड़ कर अब जहाँ भी कहीं दर्शनों का आनन्द पा लेता है बलात् लिपट जाता है। सत्त्व रज तम को सृष्टि बड़े-बड़े सात्त्विक यतियों की दिव्य दृष्टि को भी जहाँ चिपट जाती है वहाँ इस यति का बाल भी बाँका न कर पाई। आपके जीवन में आपको स्खलित करने के लिये काम कभी साकाम नही हो पाया, लोभ को यही क्षोभ रहा कि वह उन्हें विचारों के चिन्तन में भी न देख पाया क्रोध को बोध भी नही रहा, मोह को तो सदा दुःखित होकर ओह–२करता ही पाया गया। अहङ्कार बिचारा उनकी हुंकृति सुनने मात्र से ही भीति की शङ्काओ में न जाने कहाँ अन्तर्ध्यान रहता था। ईश्वर पर अटल विश्वास तो ऐसा था कि विकट सङ्कटो के कुटिल कटाक्ष भी निकट आकर उन्हे घूरने तक का साहस न रखते थे। भोगवाद के ऐसे अनन्यवाद भक्त थे कि भीषण ज्वर में भी अपथ्य क्रियाओं की विक्रिया से वे विचलित न होते थे। अधिक क्या— वे विचित्रताओं की सचित्रभित्ति थे। अद्भुत क्षमताओं के अक्षीण कोष थे। अनिवचनीय वचन रचना के अचिन्त्य विचारक थे। अनिवर्णनीय गुण गौरव गरिमा के अगम्य गिरि थे। अधृष्य धीर धीषणा के अध्ययनातिग धरातल थे। अतुल तर्क ततियों के वितत व्रतती थे। अप्रमेय प्रबल पाण्डित्य के अखण्ड भण्डार थे।

वैदिक सिद्धान्तो का प्रचार ही उनकी आचार संहिताथी । प्रतिप-क्षियों के आक्षेपो का पटाक्षेप करना ही उनका लक्ष्य बिन्दु था। संस्कृत भाषा के वैभव को सार्वभौम बनाना ही उनका चिर स्वप्न था। महर्षि दयानन्द द्वारा "कृण्वन्तो विश्वमार्यम्" का उद्घोष विश्व के कण-कण में प्रतिध्वनित कर देना उनका धवल ध्येय था वे वास्तविक रुप में:—

पद्माकरं दिनकरो विकचीकरोति,
चन्द्रो विकासयति कैरव चक्रवालम् ।
नाभ्यर्थितो जल धरोऽपि, जलं ददाति,
सन्तः स्वयं पर हिते सुकृताभियोगः ।।

के प्रत्यक्ष रुप से मूर्त सूक्ति थे ।

श्री १०८ श्रद्धेय

२१-श्रद्धानन्द सरस्वती

श्रद्धालु हृदयो की सुदूरञ्जत श्रद्धा के आराध्य देव जिस श्रद्धा को आनन्दित करते थे वह हिमालय से भी ऊँची थी और प्रशान्त महासागर से भी गहरी थी। उनका शरीर जहाँ अतिशय समुन्नत था उसी के साथ उनके सेवा, सहिष्णुता, धीरता, गम्भीरता, विवेक शीलता आदि गुण भी समुन्नत थे। उनके विचारों की चोटी पर चढ़ना हिमालय की सर्वोच्च चोटी से कम नही था उनकी अगाध चारित्रिक गम्भीरता में गोता लगाना दुष्कर तो था ही साथ ही गौरवास्पद भी था।

"मनस्वी कार्यार्थी गणयति न दुःखं न च सुखम्" की सूक्ति पर उनका समस्त जीवन सन्तुलित था। यदि कही पहुँचने में बिचारी विघ्नों को बाधा पड़ी तो उनका कार्य शीलता के शिलोच्चय को दृढ़ भूमि ही थी। अहर्निश सेवा संलग्नता के व्रती का व्रत तो देखिये सामाजिक कार्यार्थ चाहे शुल्क संग्रह का लक्ष्य बनाया हो चाहे प्रचारार्थ वैदिक धर्म धारण को अवधूत धवल ध्येय धारण किया गया हो चाहे सामाजिक कुरीतियों, कुप्रथाओ के कथन को व्यर्थीकरण का कठिन कार्य आ पड़ा, हो, चाहे दीन-हीन, तन- क्षीण मुखमलीन दारिद्रय की निर्दयता से दलित सामाजिक व्यावहारिक क्रूरता से पददलितों के उद्धारार्थ अवसर ने आकृष्ट कर लिया हो इस अथक परिश्रमी को भी थका देने की परिस्थिति जब स्वयं ही थक कर

चूर-चूर हो जाती थी तब ऐसा प्रतीत होता था मानो इस महा-मानव को महामान्यता के प्रोन्नत शिखर से गिराना तो क्या खिसकाना भी असम्भव है।

त्याग के धनी:-

सांसारिकता के बन्धन में बंधजाने पर बड़े-बड़े धर्म धुरीण धनान्ध बन्धुओं के सम्बन्धो को ध्यान की धरा से जब किञ्चित् भी नीचा उतारना अकिञ्चितकर समझते थे तब त्याग के महान् तीर्थ, तप. पूत तपस्वियों के भी महोन्नतमहोत्सव बनकर सतत वितत वितान सन्तान के स्तुत्य ब्रह्मा के रुप में भी आपको देखा जाता था और उसी रुप में किया जाता था सत्कृत भी। पवित्रतम आचरणों का जो महायज्ञ आपकी कार्य प्रक्रिया की यज्ञ शाला में सम्पन्न किया जाता था उसकी सुगन्धी केवल प्रदेश मात्र में ही नही अपितु राष्ट्र मण्डल के समस्त प्रदेशों में और भूमण्डल के अखण्ड मण्डलों मे भी व्याप्त हो जाती थी।

ये वह महामनस्वी थे जो अपने समस्त कुटुम्ब के मोह से मुक्त होकर मुक्तात्मा होने के लिये मुमुक्षुओं को भी किंकर्त्तव्य-विमूढ़ कर देते थे।

भगवती भागीरथी के सुभग परिसर पर सौभाग्य की परम्पराओं को पुनीत करने के लिये अपने विरक्त भी अन्तः करण की गुरुकुलीय गौरव गरिमा की गुरुता बढ़ाने का व्रत लेकर वही से सेवा की स्रोतस्विनी प्रवाहित करके स्वदेश साधनाको सिद्धिमें अनुरक्त कर रहे थे।

साथ ही पञ्च यज्ञों को पञ्चीकरण वेदान्त विद्या के समान समाहित करते हुए समस्त ब्रह्मचारी वर्ग को प्रातः यननियमाभ्यास, सन्ध्या, वेदाध्ययन, सत्सङ्ग आदि से ब्रह्मयज्ञ, प्राकृतिक वायुमण्डल की शुद्धयर्थं देवयज्ञ, प्रस्तुत समवेत पितृसम प्राध्यापक जनों की सेवा द्वारा सन्तुष्टि से पितृयज्ञ, अभ्यागत–अभ्यागत जनो की सेवा द्वारा आतिथ्य से अतिथि यज्ञ, और बलिवैश्व को आहुतियो से बलिवैश्व यज्ञ सम्पादित कराते थे।

यह आपके ही अतुल तप का परिताप था कि उत्तर दिक्-से उत्तरण मे अनियन्त्रित जल प्रपात और हिंसक जन्तुओं का तुमुल उत्पात गुरुकुल वासियों को स्वल्प मात्र भी त्रस्त नही कर पाता था।

सन्यास दीक्षा के पश्चात् वे असङ्ग होते हुए भी गुरुकुल भूमि में शास्त्रचिन्तन की, प्रचार भूमि में विचार चिन्तन की और भारतीय स्वाधीनता की ध्येय भूमि में राष्ट्र चिन्तन की त्रिधाराओं के त्रिवेणी सङ्गम थे।

स्वाधीनता की अनवरुद्ध धारा के मध्य प्रवाह में खड़ा हुआ गुरुकुल कांगड़ी के रूप मे उनका कीर्ति ध्वज आज भी फहराता हुआ देखा जा सकता है।

स्वाधीनता संग्राम की उस भयावह भूमि को कौन भूल सकता है जब हिन्दू मुस्लिम एकता के प्रतीकस्वतन्त्रता प्रेमियों

के जन समवाय का नेतृत्व करने वाले आपकी गति की प्रतीर करने वाला सार्जेण्ट अंग्रेज यह सुनकर दंग रह गया कि ध्यान रहे इस जन समवाय पर तब गोली चलेगी जब इस छाती को भेदन करने का साहस आप पूर्णतया रखते हों। दिल्ली की राजधानी का वह पथ धन्य है जिसकी छाती पर इस वीर सेनानी की वीर गर्जना छाती हुई गौराङ्ग प्रभुओं के असीम प्रभुत्व को हतप्रभ कर गई।

कौन जानता था कि अध्यात्म शक्ति का महापुञ्ज यह यति जिसके राज्य मे रश्मियों का राजा भी क्षण भर विश्राम नहीं लेता था उसे भी प्रकम्पित करने की अथाह शक्ति रखता था। काँग्रेस सङ्गठन की उच्च से उच्चतर समितियों की अध्यक्षता के दिये गये प्रलोभन इस यति को यकिञ्चित् भी रुचिकर नहीं हुए।

ये जानते थे कि भारत की अखण्डता के मूल में मुस्लिम जन-समवाय अपनी जन संख्या का उपयोग भारत को खण्डित करने के लिये कभी भी कर सकता हैं-अतः उसे हिन्दू धर्म में दीक्षित करके इस आतंक से सुरक्षित होना ही समुचित उपाय है, परन्तु हन्त! अभी वे इस महान् कार्य को प्रगति दे ही रहे थे कि धर्मान्ध मुस्लिम परस्ती के कुछ सिरफिरो ने अब्दुल रसीद नामक व्यक्ति को भड़का कर पिस्तौल की गोली के सहारे विश्वासघात करके सर्वथा के लिये उस महान् मनस्वी के पार्थिव शरीर को हमसे लूट लिया। परन्तु अपने यशशरीर से सूर्य चन्द्र की चमक की अवधि तक वे जन जनमानस में उसी रुप में रहेंगे।

ये शौर्य के धनी, धर्म के आधार, स्वाधीनता के सेनानी, सेवा के सदन, पवित्राचार के चत्वर, औचित्य के शिलोच्चय, विवेक

शीलता के परिशीलित आश्वासन और आर्यत्व की साक्षात् मूर्त्तिथे

भय तो विचारा स्वयं ही अभय दान लेने के लिये हाथ जोड़े खड़ा रहता था। तात्कालिक सूझ बूझ को बुझाने वाले न जाने कितने झञ्झटों के झञ्झावात आँधी बन कर आये किन्तु झटिति झीने निर्झरों की तरह झर-झर होकर मुरझा गये। दृढ़ता को उधेड़ने के लिये बढ़बढ़कर अधेड़ रुढ़ियो ने भी प्रौढ़ से प्रौढ़तर गाढ़े-गाढ़ेप्रहार किये किन्तु अन्त में विमूढ़ होकर ही ढुलक गयी।

आज उनके अभाव में उनके भक्त जगत् की अन्तर्भावना अपनी विभूति को भूतपूर्व सोचते ही अभूत पूर्व रुप से दुःखदिग्ध हो उठती है। उस महा मनस्वी के अवतरण के लिये आज भी आर्य समाज और प्राञ्जल राष्ट्र समाज टक- टकी लगाये बैठे है। उनके लिये उनके द्वारा आचरित तथा उनके समान ही प्रसिद्ध स्वनाम धन्य सुपुत्र इन्द्रजी विद्या वाचस्पति द्वारा प्रचारित मार्ग पर चलना ही सच्ची श्रद्धाञ्जलि है।

अन्त में ध्यान रहे "वैदिक धर्म प्रचार के विचारक गुरुकुल सञ्चालकों को स्वामीजी की अचल सम्पत्ति सद्विचार प्रचार और सदाचार आचरण का उत्तरदायित्व द्विगुणित उत्साह से पूर्ण करना है"।

युग प्रवर्तकः—

२२-- विवेकानन्द

हे अघ निवर्तक ! युग प्रवर्तक ! हृदयनर्तक विश्व के,
हे धर्म बोधक ! ताप रोधक ! बुद्धिशोधक, सर्व के,
हे धैर्य धारक ! भय निवारक ! कर्मकारक. लोक के,
हे दिव्य लोचन ! मोह मोचन ! स्वल्प शोचन हो मुझे ।।

हे युग प्रवर्तक ! विवेक के अद्भुत आनन्द ! संसार गले फाड़-फाड़ कर कह रहा है कि जब तक किसी बात का समय नहीं आ जाता, तब तक उसमें सफलता नहीं मिलती । रावण का मरण श्री सीता-महारानी के हरण से पूर्व न जाने कितने अपहरणों के होते हुए भी न हो पाया, पाप के वंश और न जाने कितनी दुष्टताओं के अंश तथा अशिष्टों के महामास्टर कंस का ध्वंस श्री देवकी के प्रसूत आठवें गर्भ से पूर्व तक बड़े-बड़े प्रयत्नों के होने पर न हो पाया था । सज्जनों के मूर्तिमान काल दुर्जनों के कमनीय कण्ठमाल दैत्यभावना रमणी के कर्णतमाल शिशुपाल का सौ अपराधों की समाप्ति से पूर्व स्वयं भगवान् कृष्ण भी संहार करने में असमर्थ थे । यही सब कुछ सोचकर धर्माराधन में सुस्थिर महाराजा युधिष्ठिरने ब्रह्मचर्य की शक्ति से तपे हुए ग्रीष्म के समान भगवान् भीष्म से यह प्रश्न कर ही तो डाला कि भगवान् !

कालो वा कारणं कारणं राज्ञः राजा वा कालकारणम् ?,
भगवान् ने बहुत सोच समझकर उत्तर दिया कि—

इति ते संशयो माभूत् राजा कालस्य कारणम् ॥

अर्थात् समय राजा का निर्माण करता है या राजा समय का ? यह पूछे जाने पर उत्तर मिला कि राजा ही समय का निर्माण करता है । इसीलिये तो शास्त्रकार कहते हैं कि:—

"यथा राजा तथा प्रजा"।

हे युग प्रवर्तक ! इसी कथन के अनुसार आपके परम प्रशंसनीय प्रभाव के स्वभाव ने जनहित के अभाव को देखकर जो सद्भाव दुर्जनता के दुर्भावों पर भेंट किये आज उससे विश्व का कोना-२ अनुप्राणित हो रहा है । आपका यह कथन कि "तुम्हारे हृदय में सब भाव हैं. उन्हें केवल प्रकटभर करना है" यह कितना सारगर्भित था, इसे वही जानते हैं जिन्होंने आपके जादू भरे भाषणों के श्रवण करने का और भव्य भावों में भ्रमण करने का सौभाग्य उपलब्ध किया है । जिन्हें इस बात का पता है कि आपकी अमेरिका यात्रा के समय जब आपकी वक्तृता की अवक्रकृति तद्देशीयों की हृदय-विकृति के सम्मुख तथा युगों से प्रवर्तित धर्मनिगकृति के उन्मुख होकर भारतीय संस्कृति के कलित कौशल का वास्तविक अभिनय कर रही थी, उस समय ऐसे कौन-२ से दुर्भाग्यशील हृदय होंगे जो आपके चरण चूमने अपनी मस्ती में भूमने और आपकी वक्तृता के

के प्रवाह में घूमने से रह गये होंगे ? हे युग प्रवर्तक ! क्या यह कम आश्चर्य का विषय है कि इंग्लैण्ड की यात्रा के समय भारत पर शासन करने वाले जिन मस्तिष्कों में भारतीय विभूतियों के विषय में जो अश्रद्धा का प्रवाह भारतीय सद्वृत्तियों के साथ संवाद करने में भी हिचकता था वही आपके युग प्रवर्तक अन्धविश्वास निवर्तक बलात् प्रत्येक स्वाभिमानी के भी शिरों का नर्तक भाषण का स्वल्प भी संकेत पाते ही लोटपोट हो गया ॥

भारतीय प्रसुप्त आत्मा को इस प्रकार प्रबुद्ध करने वाले हे युग प्रवर्तक ! "नायमात्मा बलहीनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन" कि बहुत बोलने, बहुत मेधावी होने अथवा वेदों के पढने से भी आत्मा को प्राप्त नहीं किया जा सकता वेद स्वयं इसको कह रहे हैं। क्या आप किसी दूसरे शास्त्र में भी ऐसी निर्भीकवाणी सुन सकते हैं कि वेद पाठ से भी आत्मा नहीं प्राप्त किया जा सकता ? हृदय को खोल कर चिल्लाकर उसे बुलाना पड़ेगा। तीर्थ या मन्दिर में जाने से तिलक लगाने अथवा वस्त्र विशेष पहनने से धर्म पालन नहीं होता। प्रभुकी प्राप्ति के लिये आत्मा को जगाना पड़ेगा । यह आपका निर्भीक कथन, यह आपका वास्तविकता की ओर अभ्यर्थन, यह आपका स्वसौम्यभावों का सुपरिप्रथन, किसके हृदय का परिवर्तन करने का सामर्थ्य नहीं रखता ? और आपके चिन्तित ज्ञान का अन्त नहीं। प्राचीन काल में अथवा वर्तमान समय में कोई सर्वज्ञ होने का दावा नहीं कर सकता। यदि प्राचीन काल मे बड़े-२ ऋषि महर्षि हो गये हैं तो निश्चय जानो कि आज कल भी बहुत से ऋषि महर्षि हो सकते हैं। यदि प्राचीन काल में व्यास

बालमीकि शंकराचार्य हो गये हैं तो आप में से प्रत्येक व्यास शंकराचार्य क्यों नहीं हो सकता? ओह! कैसी युगान्तर बालमीकि कारिणी, जनजनमानस भ्रमनिवारिणी, विद्वज्जनमनोहारिणी है यह परिपी-नां सा माँसल मीमांसा? दूसरे स्थान पर आपका यह मनोहारी प्रवचन कि "यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्यमनसा सह। न तत्र चक्षुर्गच्छति, नवाग् गच्छति, नो मनः नाहं मन्ये सुवेदेति नो न वेदेति वेद च" मन के साथ वाक्य जिसको न पाकर वापस आता है वहाँ नेत्र की पहुँच नहीं है, न वहाँ पर वाणी जा सकती है। न मन में उसे जानता हूँ यह नहीं समझता और उसे जानता नहीं यह भी नहीं समझता। तब जीवात्मा सारे बन्धनों से मुक्त हो जाता है उसी समय उसके हृदय में अद्वैत वाद का मूल तत्व "तत्रको मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यतः" मैं और सम्पूर्ण जगत् एक हैं मैं और ब्रह्म एक है। सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में मेरी ही आत्मा है और मेरी आत्मा में सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड है के रुप में उदय होता है। उसी समय" मित्रस्य चक्षुसा समीक्षामहे "समस्त विश्व को मित्र की दृष्टि से देखें का महान् आदर्श हमें अपनी गोदी में बैठा लेता है, कितना हृदयस्पर्शी, दूरदर्शी और ज्ञान विमर्शी है। हे युग प्रवर्तक! आपके प्रवचन पायसान्न के उपरिदृष्ट केवल तीन चावल मात्र ही कितने युग प्रवर्तक हैं? कितने अघ निवर्तक हैं? और कितने साधुजन हृदयाकर्षक हैं ??? आपकी वाणी ने वेदवीणा होकर जो हुङ्कृति विश्व

के श्रौत्र प्रदेशतक पहुंचाई है उससे कौन मुखरित नहीं हो गया है? आपके सामयिक तत्व विवेचन ने जीव व रचना के वचनामृत को अनिर्वचनीय वृष्टि करके किसको मधुर दृष्टि को आनन्द की महनीय सृष्टि में नहीं पहुंचा दिया है? आपके औदार्यपूर्ण भावों के सौजन्य का पाञ्चजन्य फूंककर ऐसा कौन है जिसके कानों को निष्क्रियता से घुमाकर सक्रियता की सरल सरणि पर सैर न कराई हो? आपकी युग प्रवर्तक शक्ति ने ऐसा कौन होगा जिसकी श्रद्धा की गोद में प्रसुप्त भक्ति को भगवान की अनुरक्ति कि के लिये प्रसक्ति न प्रदान की हो? हे गुणों के गौरव! विश्व को दुःखमय रौरव से से त्राण दिलाने के लिये तुम्ही हो जिसने अमन्द आनन्द निस्यन्दिनी ब्रह्मानन्द की वन्दनीय मन्दाकिनी में निर्द्वन्द्व स्नान कराया है॥

२३-- प्रचीन शस्त्र विद्या

(हिन्दी की दुर्दशा–

सण्डीला से श्री ब्र० देव शर्मा जी के नाम गुरुकुल म• वि० ज्वालापुर के लिये "शस्त्र विद्या वाला लेख आवश्यक" इतने रुप में हिन्दी का तार दिया गया था जो कि दि• २४ का दि० २६-३-८० को मिला जिसमे लिखा हुआ था कि "शास्त्री विद्यालय खनिदात आवश्यक" तथा सण्डीलाका चण्डी गढ़ पता था इस अशुद्धि के कारण बिलम्ब होने सेयह लेख उचित स्थान न पा सका जिसके लिये पाठक क्षमा करेंगे।)

समय बड़ा बलवान है, वह ऊंचों को नीचा और नीचों को ऊंचा बना देता है। आज प्राचीन शस्त्र विद्या के विषय में भारतीयों को कहना नहीं भाता। अंग्रेज यही चाहते थे कि भारतीय शरीर पिण्ड से भले ही भारतीय रहें, पर हृदय और मस्तिष्क से पश्चिम के ही उपासक रहें वैसा ही हुआ अंग्रेजी शिक्षा ने वह जादू भारतीयों पर छोड़ा कि आज भारतीय अपनी प्राचीन संस्कृति को पढ़ना तो क्या सुनना भी नहीं चाहते। संसार का विश्वास है कि आज जैसी वैज्ञानिक शस्त्र विद्या की उन्नति पहले नहीं थी।

पाठकजन ! जरा थोड़ा सा दिग्दर्शन हम आप को महाभारत के शब्दो में कराते हैं। थोड़ा सा परीक्षण कीजिये और कीजिये दोनों की तुलना।

महाभारत में १८ अक्षौहिणी सेनाऐ ११ दुर्योधन की ओरसे और ७ पाण्डवों की ओर से कुल मिलाकर लगभग ७० लाख सेना १८ दिन में स्वाहा हो गई। जब कि विगत महायुद्ध मे १८ दिन तो क्या वर्षों के युद्ध मे भी एक लाख तक सैनिक नहीं मरे और मरे भी विचारे निरपराधना गरिक। अकेले दादा भीष्म जिन की अवस्था उस समय १७५ वर्षों की थी प्रतिदिन १० सहस्र योद्धाओं का वध करके सायं काल के समय सन्ध्या करते थे। जब कि आज कल के योद्धा लाखों भी मिलकर परस्पर सैकडों की संख्या मे भी संहार नहीं कर पाते। कई दिनो तक मोर्चों की खाइयो मे पड़े-पड़े दाँव लग गया तो भले ही दो चार मार लेते हों। रही एटम बम की बात उसकी तुलना भी अभी पाठक गण स्वयं कर सकेगें।

द्रोण की प्रतिज्ञा थी कि मैं ७५ सहस्र योद्धाओं का एक मास मे संहार करुंगा। कृपाचार्य ५० सहस्र और अश्वत्थामा ४० सहस्र योद्धाओं को मारने का दमभरते थे। कर्ण ५ दिन मे ५ लाख योद्धाओं को यमराज का अतिथि बनाने का दावा करता था और सच तो यह है कि इन योद्धाओं ने वस्तुतः बहुत अंशो तक ऐसा करके भी दिखाया है।

द्रोणपर्व का संशप्तक वध पर्व उठाकर देखिये वहाँ लिखा है जब नारायणी सेना ने क्रुद्ध होकर अर्जुन और श्री कृष्ण पर एक साथ लाखों की संख्या में वाण वर्षा की, तब अर्जुन ने क्रुद्ध होकर अपने गाण्डीव से वज्रास्त्र का प्रयोग किया जिससे कि प्राञ्जलीक अर्द्ध-चन्द्रनाराच और वाराहकर्ण आदि एक-एक अस्त्र से सैकड़ों-२ अस्त्र

निकल कर तत्क्षण ही आकाश में व्याप्त हो गये साथ ही अर्जुन ने फिर त्वाष्ट्र शस्त्र का प्रयोग किया जिससे शत्रु आपस में एक दूसरे को अर्जुन समझ कर परस्पर लड़कर समाप्त हो गये। देखिये वहाँ लिखा है—

अथास्त्रमरिशस्त्रघ्नं त्वाष्ट्रमभ्यसदर्जुनः।
ततो रुप सहस्त्राणि प्रादुरासन् पृथक् पृथक् ॥
आत्मनः प्रतिरूपैस्ते नाना रूपैर्विमोहिताः॥
अन्योन्यमर्जुनं मत्वा स्वात्मानं च जघ्निरे ॥

बहुत सम्भव है कि इस शस्त्र के चलाने पर अंधकार हो जाता हो। फिर उसमें से निकले स्फुलिङ्गों और भापों में अस्त्र छोड़ने वाले का प्रतिबिम्ब दीख पड़ता हो इस समय में इस शस्त्र का आविष्कार तक भी नहीं हुआ।

इसी प्रकार "आञ्जलीक वेध विद्या" का इसी पर्व मे वर्णन आया है। १० सहस्र हाथियों के बल वाले भगदत्त के हाथी ने जब भीमसेन पर आक्रमण किया तब महाप्राण भीम जरा भी विचलित नहीं हुए यद्यपि उसने भीम का रथ, घोडे सारथि आदि सबको क्षण भर में चूर कर दिया। वे तत्काल रथ से उछल कर हाथी के नीचे पेट पर इतने जोर से चिपटे कि हाथी चिंघाड कर जमीन पर गिर पड़ा और युद्ध देखने वाले सुर असुर आश्चर्य सागर मे डूब गये। वहाँ लिखा है—

आञ्जलीका वेधविद्या भीमसेन प्रवर्तिता ।
दुधर्षमपि तन्नागं सचीत्कारमपातयत् ।।

वर्तमान समय में इस विद्या का कोई आविष्कार देखने में नही आ रहा है । इसी पर्व मे "ब्रह्मास्त्र" के लिये लिखा है—

ततः शत सहस्राणि शराणां नत पर्वणाम् ।
असृजन्नर्जुने राजन् संशप्तक महारथाः ।।
नैव कुन्ती सुतः पार्थो नैव तावद् जनार्दनः ।
न हयो न रथो राजन् दृश्यन्ते स्म शरैश्चितः ।।

अर्थात् जिस समय संशप्तक योद्धाओं ने वीरवर अर्जुन के ऊपर एक लाख नतपर्व वाणों की घोर वर्षा की, उस समय भगवान् कृष्ण, अर्जुन, रथ और घोड़े अस्त्रों से ऐसे छिप गये जैसे अंधकार में कुछ भी नही दीखता है –तब–

तदा मोहमनुप्राप्त सिष्वि देहि जनार्दनः ।
अतस्तान् प्रायशः पार्थों ब्रह्मास्त्रेण निजिघ्निवान् ।।

तब भगवान् कृष्ण पसीने से लथपथ हो गये । यह देखकर अर्जुन ने ब्रह्मास्त्र छोड़ दिया, जिससे ।

ऋष्टि प्रासासि परिघाः समुद्गार परश्वधाः ।
विच्छिन्ना वहवो येन नृणां भल्लै किरीटिना ।।

उसके प्रभाव से ऋष्टि प्रास, तलवार, परिध, मुगद्र, परश्चब: आदि शस्त्रों सहित योद्धाओं की भुजाये कट कट कर भूमि पर गिरने लगी और थोडी देर में ही सब शत्रु निशशेष हो गये। इस शस्त्र का आविष्कार भी अभी तक नहीं हुआ है। महाभारत का अनुशीलन करने वाले या उसके सुनने वालों को प्रायः इतना तो ज्ञात है ही कि महाभारत की समाप्ति के समय अश्वत्थामा के द्वारा पाण्डवों के पुत्रों के हनन के पश्चात् द्रौपदी के द्वारा प्रेरित अर्जुन भीम, कृष्ण आदि ने अश्वत्थामा को पकड़ने की चेष्टा की तब उसने इषीकास्त्र का प्रयोग किया।

तस्तस्यामिषीकायां पावकाः समजायत।
प्रधक्ष्यन्निव लोकास्तान् कालान्तक यमोपमः॥

अर्थात् -तब- उस इषीकास्त्र के छूटने पर एक ऐसी भीषण अग्नि निकली जैसे तीनों लोकों को भस्मसात् करने के लिये प्रलय कालीन यमाग्नि हो। तब महारथी अर्जुन ने उसे शान्त करने के लिये ब्रह्मशिर अस्त्र का प्रयोग किया।

ततस्तदस्त्रं सहसा सृष्टं गाण्डीव धन्वना।
प्रजज्वाल महर्चिष्मधुधान्तानिल सन्निभम्॥

और तब उस महारथी से छोड़े गये उस अस्त्र से युगान्त अग्नि के समान दूसरी भीषण ज्वालाजाल की लपटें निकलने लगी और ब्रह्मास्त्र व्यर्थ हो गया आगे लिखा है—

अस्त्रं ब्रह्मशिरो नाम परमास्त्रेण बाध्यते ।
समाद्वादश पर्जन्यस्त्व द्राष्ट्रं नाभिवर्षति ॥

अर्थात् ब्रह्मशिर नामक अस्त्र जहाँ दूसरे अस्त्र से बाधित होता है, वहाँ बारह वर्ष तक पानी नही बरसता है। हो सकता है कि एटम बम "ब्रह्मशिर" नामक अस्त्र से कुछ मेलखाता हो। क्योंकि एटम से भी बारह वर्ष तक वर्षा नहीं पड़ती और हो सकता है कि उदजन बम "इषीकास्त्र" की नकल हो परन्तु आज के आविष्कारों में परस्पर की काट नहीं दीखती, जब कि प्राचीन समस्त अस्त्रों की परस्पर काट भी देखने को मिलती है।

एक बार अश्वत्थामा ने श्री कृष्ण जी के पास जाकर कहा- भगवन् ! मैं ब्रह्मशिर नामक अस्त्र को जानता हूँ। पिता ने मुझे इसी की शिक्षा दी है। आप मुझसे यह शस्त्र सीख लें और अपना सुदर्शन चक्र मुझे देदें। उन्होंने मुस्करा कर अपना चक्र अश्वत्थामा के सामने रख दिया परन्तु अश्वत्थाम उसको सीखना तो दूर उसे उठा भी न सका "न चैवमशकत् स्थानात् सञ्चालयितुमप्युत" इत्यादि। तब कृष्ण जी ने कहा भले मानस देख—

ब्रह्मचर्यं महत् घोरं तप्त्वा द्वादश वार्षिकम् ।
हिमवत्पार्श्वमास्थाय यो मयातप सार्जितः ॥

अर्थात :- १२ वर्ष घोर ब्रह्मचर्य का पालन करके हिमालय की तराई में जिसे मैने तपस्या के बलसे प्राप्त किया है उसे तू साधारण व्यक्ति कैसे ग्रहण कर सकता है। सुदर्शन चक्र की यह विशेषता थी कि वह एक नही सहस्रों व्यक्ति यों के सिरों को काट कर वापिस प्रयोक्ता के पास आजाता था। यह भी अविष्कार आज

कहाँ ? इसी प्रकार बीसियों और भी शस्त्रों के प्रमाण दिये जासकते है परन्तु लेख वड़ा हो जायेगा अतः दो-चार के नाम लेकर पाठकों से याचना की जायेगी।

जब जटासुर का निहन्ता घटोत्कच कर्ण से युद्ध कर रहा था और विमान के द्वारा कौरवों की सेना का संहार कर रहा था उस समय अपनी सेना का सर्वनाश देखकर कर्ण को विवश होकर अपनी अमोघ शक्ति शस्त्र का प्रयोग करना पड़ा। क्योंकि उससे वह अर्जुन को मारना चाहता था। अर्जुन ने कर्ण का वध आञ्जलीक नामक अस्त्र से किया था लिखा है कि—

अथत्वरं कर्ण वधाय पार्थं, महेन्द्र वज्रानल दण्ड सन्निभम्।
आदत्तचाथाञ्जलिकं निषङ्गात्, सहस्र रश्मेरिव रश्मिमुत्तमम्॥

प्राचीन समय में "खगवाण" एक ऐसा भीषण अस्त्र होता था, जो आकाश से गिरते वाणों गोलों और अन्यान्य भीषण शस्त्रों को क्षण भर में तोड़ फोड़ कर वापिस तुणीर में आजाता था।

तानाशुगैरा पततोऽधमाशु, निर्वाण हन्तु खगमान खएव।
द्विधा त्रिधा चाच्छिन्न दाशु शुलस्ततोऽन्तरिक्ष निनदोवभूव॥

इस प्रकार वरुणास्त्र, वायव्यास्त्र, गरुड़ास्त्र, शैलास्त्र, नारायणास्त्र, सम्मोहनास्त्रादियों का भी प्रयोग हुआ है। विराट की गाय चुराने पर कौरवो की भारी सेना के साथ अकेले अर्जुन ने युद्ध करते समय सम्मोहनास्त्र का प्रयोग किया था। जिससे समस्त

शत्रु मरे भी नहीं और उनके वस्त्र उतार कर अर्जुन अपने द्वार पर ले आये। कौरवों की ऐसी करारी हार पहले कभी नहीं देखी गई थी।

इस शस्त्र का वर्णन रघुवंश में भी आया है। एक गन्धर्व ने अज द्वारा शाप मुक्त होने पर अज को उसे भेंट करते समय कहा था कि—

सम्मोहन नाम सखे ममास्त्रं प्रयोग संहार विभक्त मन्त्रम् ।
गान्धर्वं भावायात्स्वयतः प्रयोक्तुर्नचारि हिंसा विजयश्चहते ॥

इस प्रकार प्राचीन शस्त्र विद्या बेजोड़ थी। दुःख है कि आज हम अपनी संस्कृति पर गर्व न करके विदेशों की चकाचौंध से चुंधिया रहे हैं। हमें अपने साहित्य का अनुशीलन करना चाहिये और देखना चाहिये कि कहां कैसे रत्न भरे पड़े हैं।

गुरुकुलीय ब्रह्मचारियों का यह परम कर्त्तव्य है कि वे संस्कृत का गहरा अध्ययन करके अपनी संस्कृति से विश्व को उज्ज्वल करें।

अब हम स्वतन्त्र हो गये है अंग्रेजों की दासता मिट चुकी है ऐसे अवसर पर हमारे कंधो पर भविष्य की पीढियों का उत्तरदायित्व है यदि हम कुछ भी न कर पाये तो, पता नही भविष्य की पीढ़ियां क्या कहेंगी ॥

२४- आवश्यक

आज वैज्ञानिक जगत् जितना विज्ञान से ऊर्जस्वी है उतना ही अज्ञान से भी तिरोहित है। बस बात के लिये जापान के नागसाकी हीरोशिमा नगर परमाणु बम के सर्व संहारक आक्रमण के पूर्ण साक्षी है।

इतना ही नहीं अपितु आज अद्भुत वैज्ञानिक प्रगति के कारण प्रतिदिन जन्म लेने वाली वायु प्रदूषण की अनेकानेक लहरियां पूरे पृथ्वी मण्डल पर डरावनी मुस्कराहट का आतङ्क भी अङ्कित कर रही है।

विभिन्न प्रकार के तैल वाहनो में जलकर अनेक किस्मों के कोयले कारखानों आदि में फुंक कर जो कार्बन डाइ गैस छोड़ रहे हैं उससे आज विश्व के लहलहाते हरित प्रदेश सङ्कट में पड़ गये हैं।

यदि शीघ्र ही ऊर्जा का अनुसन्धान स्वास्थ्यप्रद रुप में न हो पाया तो निश्चित रुप से यह ध्यातव्य है कि बीस वर्षों में ही समस्त भूगोल उजड़ जायेगा, सूखा पड़ जायगा और त्राहि-त्राहि मच जायेगी।

एक ओर ऑक्सीजन के स्रोत, बाढ़ों की रोक थाम के स्तम्भ, वर्षा लाने के अचूक उपकरण वृक्षो की निर्दयता के साथ बोटी-बोटी करके फेंकी जा रही है और दूसरी ओर दुर्गन्ध के अन्धे

प्रदूषणों की पीठ थपथपाकर अस्वास्थ्य की दुरवस्था को प्रभयदान दिया जारहा है।

यह ठीक है कि आज शुद्ध घृत के अभाव में प्राचीन यज्ञ पद्धति जो सार्वभौम रुप से स्वास्थ्य प्रद थी उसे जीवित करना कठिन है परन्तु इतना तो मानना ही पडेगा कि 'यज्ञो वै श्रेष्ठतमं कर्म" अर्थात् श्रेष्ठतम कर्म करना ही यज्ञ है। उन कर्मों में "शरीरमाद्यं खलु धर्म साधनम्" सब से पहले शरीर के स्वास्थ्य की रक्षा ही धर्म है साथ ही वैर भाव, स्वार्थ परता, हिंसा लूटपाट बलात्कार खाद्य वस्तुओ आदि में मिलावट, ठगी, तस्करता तथा धोखा आदि देकर राष्ट्र की नीव को उखाड़ना यज्ञविरुद्ध अवैदिक आचरण है। यज्ञ को अध्वर कहते हैं और अध्वर का अर्थ हिंसा रहित कर्म है। इसी ओर स्वराज्य से भी बहुत पहले महर्षि दयानन्द ने और पीछे महात्मा गांधी तथा पण्डित नेहरु आदि ने समस्त देशवासियों का ध्यान आकृष्ट किया है।

चाहे कोई माने या न माने यह पूर्ण सत्य है कि महापाप जब उच्छृङ्खलहोकर अट्टहास करता हुआ सीमा तोड देता है तब भीषण अकाल पड़ते हैं, समुद्र तक का पानी सूखने लगता है। भूचाल आने लगते हैं। ज्वालामुखियों की जीभ लप लपाने लगती है। अन्धी होकर आँधियां चारो ओर दौड़ पडती है। वायुप्रदूषित

होकर जीते जी प्राणीमात्र का गला घोंटने लगता है। मानव जगत् मानवता की सीमा तोड कर असीम सङ्कटों के पर्वत खण्डों से टकरा टकरा कर खण्ड-खण्ड होने लगता है।

ऐसा प्रतीत होने लगता है जैसे प्रलय आने के लिये व्याकुल हो रहा है। मनुष्य जितनी दुर्गन्ध छोडता है उसे सुगन्धी तो अवश्य ही प्रसारित करनी चाहिये साथ ही अन्य भी वायुदूषक कारणों को ढूंढ ढूंढ़ कर जड मूल से उखाड देने का भी प्रयत्न अनिवार्य समझना चाहिये।

आज नहीं तो कल इस समस्या का समाधान करना ही पड़ेगा अन्यथा सर्वनाश को निमन्त्रण देकर अपना सर्वस्व-लुटाने के लिये कटिबद्ध होजाना चाहिये।

परिशिष्ट

शुद्धि-पत्र

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१०	२१-२२,	मोघमन्नं, केवलाघो	मोघमन्नं, केवलाघो
१५	५	बूदो	बूढों
१५	६	भूरता	शूरता
१६	८	नेताओं	वेत्ताओं
२१	१०	सुदुधा	सुदुघा
२३	२४	अभिहृयंत	अभिहर्यंत
३४	४	पशु	नरपशु
३६	२५	उर्जस्विनी	ऊर्जस्विनी
३७	१०	अधिनायकवाद	अधिनायकवादी
३८	३	पहृड़ियां	पहाड़िया
३९	७	अनास्तित्व	अनस्तित्व
३९	२१	कष्ट में वसणालय	करुणा वरुणालय
४०	१३	ब्रह्ममाणु	ब्रह्माणु
४१	५	परिस्थिति	परिस्थिति का
४२	११	भनवान	भगवान
४५	११	सङ्गेत	सङ्केत

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
४७	१७	उसमें तत्व	उसमें वे तत्व
४७	२१	अनुस्यूत	अनुस्यून
५३	१७	ईस	इस
५५	१७	भमभना	समझना
५६	८	सिक्स्वरक्तन	सिखिस्तान
५८	४	विभानना	विमानना
६४	१०	निष्करण	निष्करुण
६७	३	सीदन्अरिस्त्रिध:	सीदन्त्वस्त्रिध,
७०	१४	उपद्रव्यों	उपद्रवों
७७	१३	अमेरका ने	अमेरिका में
७७	१३	मिलाना	मिलना
८०	१७	जातमिवाहन्या	जातमिवाघ्न्या
८१	१६	निराश्रिया	निराश्रया
८६	१४	बेदाङ्ग अपने	बेदाङ्ग में अपने को
८८	१३	आधिकार	अधिकार
८९	१७	जगमाते	जगमगाते
९०	१५	उस कुलीय	गुरुकुलीय
९०	१६	भी	श्री
९१	६	पास के गुरुकुल (काँगड़ी)	गुरुकुलों
९२	२५	स्वच्छता	स्वच्छन्दता
९३	५	मोल्ड फैशन	ओल्ड फैशन
१०४	५	श्रेत्रिय	श्रोत्रिय

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१०४	११	जो साई	गोसाई
१०४	१६-१७	सतु...भूमि	सतु दीर्घकाल नैरन्तर्य सत्कारासेवितो दृढभूमिः'।
११०	१२	शस्त्र	शास्त्र
१२१	११	काशी का	काशिका,
१२३	८	नी	देखी
१२३	१९	श्रेताओं	श्रोताओं
१२४	६	मेकृती	में कृती
१२५	३	ध्रुव नीति	ध्रुवा नीति
१२५	१४	तर्कश	तर्ककर्कश
१२५	२२	के	का
१२६	३	लगाने, व्यङ्गलोकोक्तियों	लगने, व्यङ्गयोक्तियों
१२६	९	वक्तृ	वक्त्रो
१२६	१६	प्रेक्स्वन्नखाग्राशनि	प्रेङ्खन्नखाग्राशनिः
१२६	१७	तृणमात्ति	तृणमत्ति
१२७	७	साकाम	सकाम
१३५	१	कारणं कारणं	कारणं
१३७	२	युगान्तरवाल्मीकि	युगान्तर
१३७	२०	झुङ्कृति	झङ्कृति

स्वदेश महिमा

हमारा भव्य भारतवर्ष कैसा पुण्य वाला है,
जहाँ आदर्श जीवन-ज्योति-जीवित-जन्म वाला है ॥
जहाँ आती जगत् को तृप्त करती जाह्नवी जिसमें,
महाशोः स्वर्ग-सौख्यों का सुराशिः रत्नमाला है ॥
यहाँ पर सर्व-विद्या-रूप आकर वेद शोभित हैं,
अखिल-ब्रह्माण्ड की शोभा-स्थली से भी निराला है ॥
हुआ सर्गादि में दीपित यहीं से ज्ञान का दीपक,
यही तो विश्व में अध्यात्म विद्या द्रव्य वाला है ॥
हिमालय उच्च मस्तक पर बना चामर सरीखा है,
धुलाता पैर सागर भूतियों में भूति वाला है ॥
यहाँ पर आ बसीं आकर बसन्तादिक सभी ऋतुएं,
हुआ क्रीडास्थली देवी-प्रकृति का प्रेम वाला है ॥
दया आनन्द से पूरे जहाँ जगमग जवाहरा थे,
यही स्वाधीन भारतवर्ष ऐसा भाग्य वाला है ॥
नहीं होती हमें तृप्तिः कहाँ तक गीत गायें हम,
छिना वैदिक अहिंसा सत्य का सन्देश वाला है ॥

श्री दुर्गा प्रिंटिंग प्रेस, कटहरा बाजार ज्वालापुर